ISSN 2278-1633ANTIM JAN

गांधी दर्शन

अंतिम जन

वर्षः 7, अंकः 10, संख्याः 60, मूल्यः ₹20

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति संग्रहालय

समिति के दो परिसर हैं- गांधी स्मृति और गांधी दर्शन।

गांधी स्मृति, 5, तीस जनवरी मार्ग, नई दिल्ली पर स्थित है। इस भवन में उनके जीवन के अंतिम 144 दिनों से जुड़े दुर्लभ चित्र, जानकारियाँ और मल्टीमीडिया संग्रहालय (Museum) है। जिसमें प्रवेश निःशुल्क है।

दूसरा परिसर गांधी दर्शन राजघाट पर स्थित है। यहाँ 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश' प्रदर्शनी, डोम थियेटर और राष्ट्रीय स्वच्छता केंद्र संग्रहालय (Museum) है।

दोनों परिसर के संग्रहालय प्रतिदिन प्रातः 10 से शाम 6:30 तक खुलते हैं।
(सोमवार एवं राजपत्रित अवकाश को छोड़ कर)

गांधी दर्शन
अंतिम जन

वर्ष-7, अंक: 10, संख्या-60
मार्च 2025

प्रधान सम्पादक
पल्लवी प्रशांत होळकर
सम्पादक
प्रवीण दत्त शर्मा
पंकज चौबे
परामर्श
वेदाभ्यास कुंडू
संजीत कुमार
प्रबन्ध सहयोग
शुभांगी गिरधर
आवरण
संजीव शाश्वती

मूल्य	: ₹20
वार्षिक सदस्यता	: ₹200
दो साल	: ₹400
तीन साल	: ₹500

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति
गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली-110002
फोन : 011-23392796
ई-मेल : antimjangsds@gmail.com
2010gsds@gmail.com
गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट,
नई दिल्ली-110002, की ओर से मुद्रित एवं प्रकाशित।
लेखकों द्वारा उनकी रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण उनके अपने हैं, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, राजघाट, नई दिल्ली के नहीं।
समस्त मामले दिल्ली न्यायालय में ही विचाराधीन।
मुद्रक
पोहोजा प्रिंट सोल्यूशंस प्रा. लि., दिल्ली - 110092

इस अंक में

धरोहर
'गाँवों और शहरों के बीच स्वस्थ नीति युक्त संबंध हो' - *मोहनदास करमचंद गांधी* 5
भाषण
एकता का महाकुंभ, युग परिवर्तन की आहट - *श्री नरेंद्र मोदी* 10
संस्मरण
महात्मा गांधी: पहली मुलाकात - *कर्मवीर पं. सुन्दर लाल* 14
विमर्श
गांधी की वैज्ञानिकता - *पराग मांदले* 22
'मैं पुराना अखबारनवीस हूँ': गांधी और पत्रकारिता - *सौरव कुमार राय* 29
महात्मा गांधी और सच्ची शिक्षा - *कुबेर कुमावत* 35
महात्मा गांधी का दक्षिण अफ्रीका में गमनागमन - *रूमा पाठक* 38
स्मरण
जब महात्मा गांधी का समाधि स्थल बना - *संतोष बंसल* 41
सामयिक
सामाजिक मीडिया से निकटता बनाम सामाजिक सरोकार से दूरी - *अभिषेक बाजपेयी* 46
कविता
माधव कौशिक की कविताएं 49
फोटो में गांधी 54
बाल कविता
महादेवी वर्मा की कविताएं 55
बाल कहानी
बंदूक वाली पिचकारी - *बद्री प्रसाद वर्मा अनजान* 57
गांधी क्विज-11 59
गतिविधियाँ 60

गांधीजी और महिला सशक्तिकरण

महात्मा गांधी ने जब भारतीय राजनीति में प्रवेश किया, तब देश में स्त्रियों की दशा दयनीय थी। पितृसत्तात्मक समाज था और महिलाएं अपने पिता, पति या पुत्र पर निर्भर थी। परदे की ओट में महिलाएं नागरिक अधिकारों से वंचित थी। एक तरह से वे पुरुषों के हाथों की कठपुतली थीं।

महात्मा गांधी ने महिलाओं की दोयम दर्जे की दशा देखी तो उन्होंने महिलाओं को इससे उबारने की ठानी। अपने प्रथम जन आंदोलन चंपारण सत्याग्रह में उन्होंने अपनी पत्नी कस्तूरबा के नेतृत्व में महिलाओं को इस आंदोलन से जोड़ा। महात्मा गांधी ने महिलाओं के शिक्षित होने पर सबसे ज्यादा जोर दिया। वे मानते थे कि केवल शिक्षा एक ऐसा माध्यम है, जिसके बल पर स्त्रियां, पुरुषों के बराबर जाकर खड़ी हो सकती हैं। इसलिए उन्होंने बिहार के भितीहरवा, बढ़रवा तथा मधुबन गांव में स्कूल तथा आश्रम खोले जिनमें स्त्रियों को पढ़ने-लिखने एवं सूत कातने का प्रशिक्षण दिया जाता था।

गांधीजी ने अपने हर आंदोलन, हर बड़े काम में महिलाओं को आगे रखा। चंपारण आंदोलन में जहां उनकी पत्नी कस्तूरबा उनकी प्रमुख सहयोगी बनीं, तो नमक आंदोलन में उनकी गिरफ्तारी के बाद सरोजिनी नायडू ने उनका झंडा बुलंद किया। लाखों की संख्या में औरतें-छात्राएँ गांधीवादी आन्दोलन में सड़कों पर उतरीं। पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर मोर्चा, प्रदर्शन, धरना, प्रभातफेरी में हिस्सा लिया, लाठी-गोली खाई। कई गर्भवती महिलाएँ जेल गयीं, कई महिलाएं छोटे बच्चों को लेकर जेल गयीं, कई पुलिस मुठभेड़ में मारी गयीं, कइयों ने लम्बे समय के लिए जेल की सजा काटीं। इस प्रकार गांधीजी ने महिलाओं को चूल्हा-चौका से आगे निकालकर समाज की मुख्यधारा से जोड़ा। गांधीजी नारी नेतृत्व के खासे पक्षधर थे। वह कहते थे कि, ''जिन्हें हम अबला मानते हैं, यदि वह सबला बन जाए तो हर असहाय शक्तिशाली हो जाएगा''।

वास्तव में गांधीजी के विचार अनुकरणीय हैं, महिलाओं को सशक्त करके ही हम सशक्त समाज की कल्पना कर सकते हैं। हर्ष का विषय है कि गांधीजी के विचारों पर चलते हुए आज सरकारी स्तर पर तेज गति से महिला सशक्तिकरण की योजनाओं को लागू किया जा रहा है।

'अंतिम जन' का ताजा अंक आपके समक्ष है। इसमें संकलित सामग्री आपको कैसी लगी, हमें जरूर अवगत कराएं।

पल्लवी प्रशांत होळकर
निदेशक

आपके ख़त

चरित्र निर्माण से होगा भविष्य निर्माण

जनवरी, 2025 का अंतिम जन का अंक पढ़ा। अंक बेहद समृद्ध, विचारोत्तेजक एवं संग्रहणीय लगा। उपाध्यक्ष श्री विजय गोयल की गांधीजी के बहाने जोखिम उठाने की सीख व कला पर आलेख एवं यशस्वी संपादक डा. ज्वाला प्रसाद का संपादकीय दिल को छूता प्रतीत हुआ। इसी क्रम में सौरव कुमार राय की बेबाक टिप्पणी युवा इस देश का नमक है: महात्मा गांधी और युवा शक्ति प्रसांगिक लगा। सचमुच आज दिग्भ्रमित और गुमराह होते युवा पीढ़ी को गांधी के विचारों को अपनाने और आत्मसात करने की जरूरत है।

किसी भी राष्ट्र के निर्माण में युवाओं की भूमिका निर्णायक होती है। क्योंकि यह पीढ़ी न केवल उर्जावान होती है, अपितु नई सोच का सारथी भी । खुद गांधीजी ने 22 दिसम्बर 1927 को 'यंग इंडिया' में लिखा है, 'युवा इस राष्ट्र के नमक-अर्थात रक्षक तत्व- हैं । यदि यह नमक ही खारापन छोड़ दें, तो उसे खारा कैसे बनाया जाए? युवाओं का खारापन बना रहे इसके लिए जरूरी है कि वे विभिन्न प्रकार के लोभ एवं व्यसनों से दूर रहें।' तभी सही चरित्र निर्माण होगा और फिर इससे राष्ट्र निर्माण।

लेकिन विडंबना देखिए कि बदलती दुनिया में और तामझाम वाली पनपती संस्कृति में तथाकथित तौर पर सभ्य बनने के लिए आज हम और आप दिखावा पसंद बन रहे हैं। युवा क्षणभंगुर दिखावा को ही स्टेट्स सिंबल मान रहें हैं। वे गुमराह हो रहे हैं। न तो विद्यालय, न ही विश्वविद्यालय और न ही घर-परिवार ऐसी शिक्षा और नैतिक मूल्यों की समाजीकृत सीख इन्हें दे रहे हैं। सांस्कृतिक प्रदूषण है ,सो अलग। आज हम और हमारी युवा पीढ़ी वर्गीकृत हो गये हैं। आजादी के 100 वर्ष 2047 में आने को है तो हमें आजादी के प्रणेता गांधी के मूलमंत्रों को आत्मसात किए रहना होगा। अपनी प्राचीन सभ्यता को न त्यागना, संस्कृति का सारथी बनना, विवेक और ज्ञानवान तर्क के सहारे समरसतामूलक समाज को बनाए रखना।

कहा भी गया है-

युवाओं का सैलाब जिस ओर उमड़ गया है।
इतिहास गवाह है, इतिहास बदल गया है।।

डा. हर्ष वर्द्धन कुमार
पटना (बिहार)

समाज को नई दिशा देती पत्रिका

हिंदी भाषा में बहुत सारी पत्रिकाएँ निकलती हैं लगभग हजारों की संख्या में। इसमें कुछ साहित्य पर तो कुछ समाज शास्त्र पर और अन्य विषयों पर भी। इनमें से कुछ ने बहुत कम समय में ही अपनी पहचान बना ली है। पत्रिका का नाम सुनते ही उसके कलेवर उसके दर्शन की छवि मन मस्तिष्क में प्रकट हो जाता है। गांधी पर भी कई सारी अच्छी पत्रिकायें प्रकाशित हो रही हैं। परंतु गांधी दर्शन से प्रकाशित पत्रिका 'अंतिम जन' ने निश्चित रूप से अपनी विशेष पहचान बनाई है। सिर्फ 12 से 15 वर्षो में इस पत्रिका ने गांधी विचार में सौम्य उपस्थिति दर्ज की है। यह गांधी विचार के साथ साथ विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर भी आलेख प्रस्तुत करती है। कविताएँ, बच्चों के लिए कहानियाँ आदि के अन्य प्रासंगिक विषयों को भी शामिल किया जाता है। पत्रिका में हरबार नई सामग्री दी जाती है। यह पत्रिका हम सब को गांधी विचार को रोचक ढंग से पढ़ने के साथ पढ़ने की आदत भी डालती है।

रामनिवास
सुरत, गुजरात

नर हो, न निराश करो मन को

मैथिलीशरण गुप्त

नर हो, न निराश करो मन को

कुछ काम करो, कुछ काम करो
जग में रह कर कुछ नाम करो

यह जन्म हुआ किस अर्थ अहो
समझो जिसमें यह व्यर्थ न हो

कुछ तो उपयुक्त करो तन को
नर हो, न निराश करो मन को

सँभलो कि सुयोग न जाए चला
कब व्यर्थ हुआ सदुपाय भला

समझो जग को न निरा सपना
पथ आप प्रशस्त करो अपना

अखिलेश्वर है अवलंबन को
नर हो, न निराश करो मन को

जब प्राप्त तुम्हें सब तत्त्व यहाँ
फिर जा सकता वह सत्त्व कहाँ

तुम स्वत्त्व सुधा रस पान करो
उठके अमरत्व विधान करो

दवरूप रहो भव कानन को
नर हो न निराश करो मन को

निज गौरव का नित ज्ञान रहे
हम भी कुछ हैं यह ध्यान रहे

मरणोत्तैर गुंजित गान रहे
सब जाए अभी पर मान रहे

कुछ हो न तजो निज साधन को
नर हो, न निराश करो मन को

प्रभु ने तुमको दान किए
सब वांछित वस्तु विधान किए

तुम प्राप्त करो उनको न अहो
फिर है यह किसका दोष कहो

समझो न अलभ्य किसी धन को
नर हो, न निराश करो मन को

किस गौरव के तुम योग्य नहीं
कब कौन तुम्हें सुख भोग्य नहीं

जान हो तुम भी जगदीश्वर के
सब है जिसके अपने घर के

फिर दुर्लभ क्या उसके जन को
नर हो, न निराश करो मन को

करके विधि वाद न खेद करो
निज लक्ष्य निरंतर भेद करो

बनता बस उद्‌यम ही विधि है
मिलती जिससे सुख की निधि है

समझो धिक् निष्क्रिय जीवन को
नर हो, न निराश करो मन को

कुछ काम करो, कुछ काम करो

आप भी पत्र लिखें। सर्वश्रेष्ठ पत्र को पुरस्कृत कर, उपहार दिया जाएगा।

‘गाँवों और शहरों के बीच स्वस्थ नीति युक्त संबंध हो’

मोहनदास करमचंद गांधी

आज संसार में दो प्रकार की विचारधाराएँ प्रचलित हैं। एक विचारधारा जगत को शहरों में बाँटना चाहती है और दूसरी उसे गाँवों में बाँटना चाहती है। गाँवों की सभ्यता और शहरों की सभ्यता दोनों एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं। शहरों की सभ्यता यंत्रों पर और उद्योगीकरण पर निर्भर करती है; और गाँवों की सभ्यता हाथ-उद्योगों पर निर्भर करती है। हमने दूसरी सभ्यता को पसंद किया है।

आखिर में, तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो इस उद्योगीकरण और बड़े पैमाने पर माल उत्पन्न करने की पद्धति का जन्म कुछ ही समय पहले हुआ है। हम यह तो नहीं जानते कि इन चीजों ने हमारे सुख को कहाँ तक बढ़ाया है, लेकिन इतना हम जरूर जानते हैं कि उन्होंने इस जमाने के विश्वयुद्धों को जन्म दिया है। दूसरे विश्वयुद्ध का अभी अंत नहीं हुआ है; और अगर उसका अंत आ भी गया, तो हम तीसरे विश्वयुद्ध की बातें सुन रहे हैं। हमारा देश आज जितना दु:खी है उतना पहले कभी नहीं था। शहर के लोगों को अच्छा मुनाफा और अच्छी तनखाहें मिलती होंगी, लेकिन यह सब गाँवों का खून चूस कर उन्हें खोखला बना देने से ही संभव हुआ है। हम लाखों और करोड़ों की संपत्ति इकट्ठी नहीं करना चाहते। हम अपने काम के लिए हमेशा पैसे पर निर्भर नहीं रहना चाहते। अगर हम अपने ध्येय के लिए प्राणों का बलिदान देने के लिए तैयार हों, तो फिर पैसे का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। हमें अपने काम में श्रद्धा रखनी चाहिए और अपने प्रति सच्चे रहना चाहिए। अगर हम में ये दो गुण हों तो हम अपनी 30 लाख रुपये की पूँजी को इस तरह गाँवों में फैला सकेंगे कि उससे 300 करोड़ रुपये की राष्ट्रीय संपत्ति पैदा हो जाए। यह मुख्य ध्येय सिद्ध करने के लिए आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने गाँवों को स्वयंपूर्ण और

हम यह तो नहीं जानते कि इन चीजों ने हमारे सुख को कहाँ तक बढ़ाया है, लेकिन इतना हम जरूर जानते हैं कि उन्होंने इस जमाने के विश्वयुद्धों को जन्म दिया है। दूसरे विश्वयुद्ध का अभी अंत नहीं हुआ है; और अगर उसका अंत आ भी गया, तो हम तीसरे विश्वयुद्ध की बातें सुन रहे हैं। हमारा देश आज जितना दु:खी है उतना पहले कभी नहीं था। शहर के लोगों को अच्छा मुनाफा और अच्छी...।

आत्मनिर्भर बना दें। लेकिन इस बात का ध्यान रखिए कि स्वयंपूर्णता का मेरा विचार संकुचित नहीं है। मेरी स्वयंपूर्णता में स्वार्थ और अहंकार के लिए कोई स्थान नहीं है।

भारत के शहरों में जो धन दिखाई देता है, उससे हमें धोखे में नहीं पड़ना चाहिए। वह धन इंग्लैंड या अमेरिका से नहीं आता। वह देश के गरीब से गरीब लोगों के खून से आता है। कहा जाता है कि भारत में सात लाख गाँव हैं। उनमें से कुछ गाँव तो इस धरती पर से बिलकुल मिट चुके हैं। बंगाल, कर्णाटक और देश के अन्य भागों में जो हजारों आदमी भुखमरी और रोगों के कारण मृत्यु के शिकार हो गए, उनका कोई लेखा किसी के पास नहीं है। सरकारी रजिस्टर इस बात की कोई कल्पना हमें नहीं करा सकते कि हमारे ग्रामवासी आज किन मुसीबतों में से गुजर रहे हैं। लेकिन मैं खुद गाँव में रहता हूँ, इसलिए मैं गाँवों की दुर्दशा को जानता हूँ। मैं गाँव के अर्थशास्त्र को जानता हूँ। मैं आपसे कहता हूँ कि ऊँचे कहे जाने वाले लोगों का बोझ नीचे के लोगों को कुचल रहा है।

बम्बई की मिलों में जो मजदूर काम करते हैं, वे गुलाम बन गए हैं। जो स्त्रियाँ उनमें काम करती हैं, उनकी हालत को देखकर कोई भी काँप उठेगा। जब मिलों की वर्षा नहीं हुई थी तब वे स्त्रियाँ भूखों नहीं मरती थीं। मशीनों की यह हवा अगर ज्यादा चली, तो हिन्दुस्तान की दुर्दशा होगी। मेरी बात कुछ मुश्किल मालूम होती होगी। लेकिन मुझे कहना चाहिए कि हम हिन्दुस्तान में मिलें कायम करें, उसके बजाय हमारा भला इसी में है कि हम मैन्चेस्टर को अधिक रुपये भेजकर उसका सड़ा कपड़ा इस्तेमाल करें। क्योंकि उसका कपड़ा इस्तेमाल करने से...।

आज जरूरत इस बात की है कि ऊपर के लोग नीचे दबने वाले लोगों की पीठ पर से उतर जाएँ।

बम्बई की मिलों में जो मजदूर काम करते हैं, वे गुलाम बन गए हैं। जो स्त्रियाँ उनमें काम करती हैं, उनकी हालत को देखकर कोई भी काँप उठेगा। जब मिलों की वर्षा नहीं हुई थी तब वे स्त्रियाँ भूखों नहीं मरती थीं। मशीनों की यह हवा अगर ज्यादा चली, तो हिन्दुस्तान की दुर्दशा होगी। मेरी बात कुछ मुश्किल मालूम होती होगी। लेकिन मुझे कहना चाहिए कि हम हिन्दुस्तान में मिलें कायम करें, उसके बजाय हमारा भला इसी में है कि हम मैन्चेस्टर को अधिक रुपये भेजकर उसका सड़ा कपड़ा इस्तेमाल करें। क्योंकि उसका कपड़ा इस्तेमाल करने से सिर्फ हमारे पैसे ही जाएँगे। हिन्दुस्तान में अगर हम मैन्चेस्टर कायम करेंगे तो पैसा हिन्दुस्तान में ही रहेगा, लेकिन वह पैसा हमारा खून चूसेगा; क्योंकि वह हमारी नीति को बिलकुल खतम कर देगा। जो लोग मिलों में काम करते हैं उनकी नीति कैसी है, यह उन्हीं से पूछा जाए। उनमें से जिन्होंने रुपये जमा किए हैं उनकी नीति दूसरे पैसे वालों से अच्छी नहीं हो सकती। अमेरिका के रॉकफेलरों से हिन्दुस्तान के रॉकफेलर कुछ कम हैं, ऐसा मानना निरा अज्ञान है। गरीब हिन्दुस्तान तो गुलामी से छूट सकेगा, लेकिन अनीति से पैसे वाला बना हुआ हिन्दुस्तान गुलामी से कभी नहीं छूटेगा।

मुझे तो लगता है कि हमें यह स्वीकार करना होगा कि अंग्रेजी राज्य को यहाँ टिकाए रखने वाले ये धनवान लोग ही हैं। ऐसी स्थिति में ही उनका स्वार्थ सधेगा। पैसा आदमी को दीन बना देता है। ऐसी दूसरी वस्तु दुनिया में विषय-भोग है। ये दोनों विषय विषमय हैं। उनका डंक साँप के डंक से भी बुरा है। जब साँप काटता है तो हमारा शरीर लेकर हमें छोड़ देता है। जब पैसा या विषय काटता है तब वह देह, ज्ञान, मन सब-कुछ ले लेता है, तो भी हमारा छुटकारा नहीं होता। इसलिए हमारे देश में मिलें कायम हों, इसमें खुश होने जैसा कुछ नहीं है।

विदेशी नौकरशाही और देश के रहने वाले शहरी लोग – गाँव के गरीबों का शोषण करते हैं। गाँव वाले अन्न पैदा करते हैं और खुद भूखों मरते हैं। वे दूध पैदा करते हैं और उनके बच्चों को दूध की एक बूँद भी मयस्सर नहीं

होती। यह कितना शर्मनाक है! हरएक को पौष्टिक भोजन, रहने के लिए उमदा मकान, बच्चों की शिक्षा के लिए हर तरह की सुविधा और दवा-दारू की मदद मिलनी चाहिए।

आज के मुट्ठी भर शहर भारत के अनावश्यक अंग है और केवल देहातों का जीवन-रक्त चूसने के मलिन हेतु के लिए ही हैं। ... अपने उद्धततापूर्ण अन्यायों और अत्याचारों के कारण शहर गाँवों के जीवन और स्वतंत्रता के लिए हमेशा खतरा बने रहते हैं।

सारी दुनिया में युद्ध के लिए शहरी लोग ही जिम्मेदार हैं, देहाती हरगिज नहीं।

मेरी निगाह में शहरों की वृद्धि एक बुरी चीज है। यह मनुष्यजाति का और दुनिया का दुर्भाग्य है, इंग्लैंड का दुर्भाग्य है और हिन्दुस्तान का दुर्भाग्य तो है ही; क्योंकि अंग्रेजों ने हिन्दुस्तान को उसके शहरों द्वारा ही चूसा है। शहरों ने गाँवों को चूसा है। गाँवों का खून वह सीमेन्ट है, जिससे शहरों की बड़ी बड़ी इमारतें बनी हैं। मैं चाहता हूँ कि जिस खून ने आज शहरों की नाड़ियों को फुला रखा है, वह फिर से गाँवों की नाड़ियों में बहने लगे। 'आपने शहरों को भारत की राज्यसंस्था पर उठे हुए फोड़े-फुन्सी कहा है। इनका क्या किया जाए?'

अगर आप किसी डॉक्टर से पूछेंगे, तो वह आपको फोड़े का इलाज यही बताएगा कि उसे चीरकर अथवा पलस्तर और पुल्टिस बाँध कर अच्छा करना होगा। एडवर्ड कारपेन्टर ने सभ्यता को एक रोग कहा है, जिसका इलाज होना चाहिए। बहुत बड़े-बड़े शहरों का होना इस रोग का एक लक्षण-मात्र है। कुदरती उपचार में मानने वाले के नाते मैं तो यही कहूँगा कि प्रचलित व्यवस्था को पूरी तरह शुद्ध किया जाए और इस तरह कुदरती तौर पर उसका इलाज हो। अगर शहर वालों के दिल गाँव में जमे रहें और वे गाँव की दृष्टि अपना लें, तो बाकी चीजें सब अपने-आप हो जाएँगी और फोड़ा जल्दी ही बैठ जाएगा।

मेरा यह विश्वास रहा है और मैंने इस बात को असंख्य बार दुहराया है कि भारत अपने कुछ शहरों में नहीं बल्कि सात लाख गाँवों में बसा हुआ है। लेकिन हम शहरवासियों का खयाल है कि भारत शहरों में ही है और गाँवों का निर्माण शहरों की जरूरतें पूरी करने के लिए ही हुआ है। हमने कभी यह सोचने की तकलीफ ही नहीं उठाई कि उन गरीबों को पेट भरने जितना अन्न और शरीर ढँकने जितना कपड़ा मिलता है या नहीं और धूप तथा वर्षा से बचने के लिए उनके सिर पर छप्पर है या नहीं।

मैंने पाया है कि शहरवासियों ने आम तौर पर ग्रामवासियों का शोषण किया है; सच तो यह है कि वे गरीब ग्रामवासियों की ही मेहनत पर जीते हैं। भारत के निवासियों की हालत पर कई ब्रिटिश अधिकारियों ने बहुत-कुछ लिखा है। जहाँ तक मैं जानता हूँ, किसी ने भी यह नहीं कहा है कि भारतीय ग्रामवासियों को भरपेट अन्न मिलता है। उलटे, उन्होंने यह स्वीकार किया है कि अधिकांश आबादी लगभग भुखमरी की हालत में रहती है, दस प्रतिशत अधभूखी रहती है और लाखों लोग चुटकीभर नमक और मिर्च के साथ मशीन का पालिश किया हुआ नि:सत्त्व चावल या रूखा-सूखा अनाज खाकर अपना गुजारा चलाते हैं।

अगर आप किसी डॉक्टर से पूछेंगे, तो वह आपको फोड़े का इलाज यही बताएगा कि उसे चीरकर अथवा पलस्तर और पुल्टिस बाँध कर अच्छा करना होगा। एडवर्ड कारपेन्टर ने सभ्यता को एक रोग कहा है, जिसका इलाज होना चाहिए। बहुत बड़े-बड़े शहरों का होना इस रोग का एक लक्षण-मात्र है। कुदरती उपचार में मानने वाले के नाते मैं तो यही कहूँगा कि प्रचलित व्यवस्था को पूरी तरह शुद्ध किया जाए और इस तरह कुदरती तौर पर उसका इलाज हो। अगर शहर वालों के दिल गाँव में जमे रहें और वे गाँव की दृष्टि अपना लें, तो बाकी चीजें सब अपने-आप हो जाएँगी और...।

आप विश्वास कीजिए कि यदि वैसे भोजन पर हम लोगों में से किसी को रहने के लिए कहा जाए, तो हम एक

माह से ज्यादा जीने की आशा नहीं कर सकते; या फिर हमें यह डर रहेगा कि ऐसा भोजन खाने से कहीं हमारी दिमागी शक्तियाँ नष्ट न हो जाएँ। लेकिन हमारे ग्रामवासियों को तो इस हालत में से रोज-रोज गुजरना पड़ता है।

हमारी आबादी का पचहत्तर प्रतिशत से अधिक भाग कृषिजीवी है। लेकिन यदि हम उनसे उनकी मेहनत का सारा फल खुद छीन लें या दूसरों को छीन लेने दें, तो यह नहीं कहा जा सकता कि हम में स्वराज्य की भावना काफी मात्रा में है।

शहर अपनी रक्षा आप कर सकते हैं। हमें तो अपना ध्यान गाँवों की ओर लगाना चाहिए। हमें गाँवों को उनकी संकुचित दृष्टि, उनके पूर्वग्रहों और वहमों आदि से मुक्त करना है और यह सब करने का इसके सिवा कोई तरीका नहीं है कि हम उनके साथ उनके बीच में रहें, उनके सुख-दु:ख में हिस्सा लें और उनमें शिक्षा तथा उपयोगी ज्ञान का प्रचार करें।

हमें आदर्श ग्रामवासी बनना है; ऐसे ग्रामवासी नहीं जिन्हें सफाई की या तो कोई समझ ही नहीं है और है तो बहुत विचित्र प्रकार की, और जो इस बात का कोई विचार ही नहीं करते कि वे क्या खाते हैं और कैसे खाते हैं। उनमें से ज्यादातर लोग किसी भी तरह खाना पका लेते हैं, किसी भी तरह खा लेते हैं और किसी भी तरह रह-बस लेते हैं। वैसा हमें नहीं करना है। हमें चाहिए कि हम उन्हें आदर्श आहार बतलाएँ। आहार के चुनाव में हमें अपनी रुचियों और अरुचियों का विचार नहीं करना चाहिए। बल्कि खाद्य-पदार्थों के पोषक तत्त्वों पर ही नजर रखनी चाहिए।

हमें आदर्श ग्रामवासी बनना है; ऐसे ग्रामवासी नहीं जिन्हें सफाई की या तो कोई समझ ही नहीं है और है तो बहुत विचित्र प्रकार की, और जो इस बात का कोई विचार ही नहीं करते कि वे क्या खाते हैं और कैसे खाते हैं। उनमें से ज्यादातर लोग किसी भी तरह खाना पका लेते हैं, किसी भी तरह खा लेते हैं और किसी भी तरह रह-बस लेते हैं। वैसा हमें नहीं करना है। हमें चाहिए कि हम उन्हें आदर्श आहार बतलाएँ। आहार के चुनाव में हमें अपनी रुचियों और अरुचियों का विचार नहीं करना चाहिए। बल्कि खाद्य-पदार्थों के पोषक तत्त्वों पर ही नजर...।

जिनकी पीठ पर जलता हुआ सूरज अपनी किरणों के तीर बरसाता है और उस हालत में भी जो कठिन परिश्रम करते रहते हैं, उन ग्रामवासियों से हमें एकता साधनी है। हमें सोचना है कि जिस पोखर में वे नहाते हैं और अपने कपड़े तथा बरतन धोते हैं और जिसमें उनके पशु लोटते और पानी पीते हैं, उसीमें से यदि हमें भी उनकी तरह पीने का पानी लेना पड़े तो हमें कैसा लगेगा। तभी हम उस जनता का ठीक प्रतिनिधित्व कर सकेंगे और तब वह हमारे कहने पर जरूर ध्यान देगी।

हमें ग्रामवासियों को बताना है कि वे अपनी साग-भाजियाँ अधिक पैसा खर्च किए बिना खुद उगा सकते हैं और अपने स्वास्थ्य की रक्षा कर सकते हैं। हमें उन्हें यह भी सिखाना है कि पत्ता-भाजियों को वे जिस तरह पकाते हैं, उसमें उनके अधिकांश विटामिन नष्ट हो जाते हैं।

हमें उन्हें यह सिखाना है कि वे समय, स्वास्थ्य और पैसे की बचत कैसे कर सकते हैं। लिओनेल कार्टिस ने हमारे गाँवों का वर्णन करते हुए उन्हें 'घूरे के ढेर' कहा है। हमें उन्हें आदर्श गाँवों में बदलना है। हमारे ग्रामवासियों को शुद्ध हवा नहीं मिलती, यद्यपि वे शुद्ध हवा से घिरे हुए रहते हैं; उन्हें ताजा अन्न नहीं मिलता, यद्यपि उनके चारों ओर ताजे से ताजा अन्न होता है। इस अन्न के मामले में मैं मिशनरी की तरह इसीलिए बोलता हूँ कि मैं गाँवों को सुंदर और दर्शनीय वस्तु बना देने की आकांक्षा रखता हूँ।

क्या भारत के गाँव हमेशा वैसे ही थे जैसे वे आज हैं, इस प्रश्न की छान-बीन करने से कोई लाभ नहीं होगा। अगर वे कभी भी इससे अच्छे नहीं थे तो इससे हमारी पुरानी सभ्यता का, जिस पर हम इतना अभिमान करते हैं, एक बड़ा दोष प्रगट होता है। लेकिन यदि वे कभी अच्छे

नहीं थे तो सदियों से चली आ रही नाश की क्रिया को, जो हम अपने आसपास आज भी देख रहे हैं, वे कैसे सह सके?... हरएक देशप्रेमी के सामने आज जो काम है वह यह है कि इस नाश की क्रिया को कैसे रोका जाए या दूसरे शब्दों में भारत में गाँवों का पुनर्निर्माण कैसे किया जाए, ताकि किसी के लिए भी उनमें रहना उतना ही आसान हो जाय जितना आसान शहरों में रहना माना जाता है। सचमुच हरएक देशभक्त के सामने आज यही काम है। संभव है कि ग्रामवासियों का पुनरुद्धार अशक्य हो और यही सच हो कि ग्राम-सभ्यता के दिन अब बीत गए हैं और सात लाख गाँवों की जगह अब केवल सात सौ सुव्यवस्थित शहर ही रहेंगे और उनमें 30 करोड़ आदमी नहीं, केवल तीन ही करोड़ आदमी रहेंगे। अगर भारत के भाग्य में यही लिखा हो तो भी यह स्थिति एक दिनमें तो नहीं आएगी; आखिर गाँवों और ग्रामवासियों की इतनी बड़ी संख्या के मिटने में और जो बचे रहेंगे उनका शहरों और शहरवासियों में परिवर्तन करने में समय तो लगेगा ही।

ग्राम-सुधार आंदोलन में केवल ग्रामवासियों के ही शिक्षण की बात नहीं है; शहरवासियों को भी उससे उतना ही शिक्षण लेना है। इस काम को उठाने के लिए शहरों से जो कार्यकर्ता आएँ, उन्हें ग्राम-मानस का विकास करना है और ग्रामवासियों की तरह रहने की कला सीखनी है। इसका यह अर्थ नहीं कि उन्हें ग्रामवासियों की तरह भूखे मरना है; लेकिन इसका यह अर्थ जरूरी है कि जीवन की उनकी पुरानी पद्धति में आमूल परिवर्तन होना चाहिए।

इसका एक ही उपाय है: हम जाकर उनके बीच बैठ जाएँ और उनके आश्रयदाताओं की तरह नहीं बल्कि उनके सेवकों की तरह दृढ़ निष्ठा से उनकी सेवा करें; हम उनके भंगी बन जाएँ और उनके स्वास्थ्य की रक्षा करने वाले परिचारक बन जाएँ। हमें अपने सारे पूर्वाग्रह भुला देने चाहिए।

एक क्षण के लिए हम स्वराज्य को भी भूल जाएँ और अमीरों की बात तो भूल ही जाएँ, यद्यपि उनका होना हमें हर कदम पर खटकता है। वे तो अपनी जगह हैं ही। दूसरे कई लोग हैं जो इन बड़े सवालों को सुलझाने में लगे हुए हैं। हमें तो गाँवों के सुधार के इस छोटे काम में लग जाना चाहिए, जो आज भी जरूरी है और तब भी जरूरी होगा जब हम अपना उद्देश्य प्राप्त कर चुकेंगे। सच तो यह है कि ग्रामकार्य की यह सफलता स्वयं हमें अपने उद्देश्य के निकट ले जाएगी।

गाँवों और शहरों के बीच स्वस्थ और नीतियुक्त संबंध का निर्माण तभी होगा जब शहरों को अपने इस कर्तव्य का ज्ञान हो जाए कि उन्हें गाँवों का अपने स्वार्थ के लिए शोषण करने के बजाय गाँवों से जो शक्ति और पोषण वे प्राप्त करते हैं उसका पर्याप्त बदला गाँवों को देना चाहिए। और यदि समाज के पुनर्निर्माण के इस महान और उदात्त कार्य में शहर के बालकों को अपना हिस्सा अदा करना है, तो जिन उद्योगों के द्वारा उन्हें शिक्षा दी जाती है वे गाँवों की जरूरतों से सीधे संबंधित होने चाहिए।

हमें ग्रामीण सभ्यता विरासत में मिली है। हमारे देश की विशालता, उसकी विराट जनसंख्या, उसकी भौगोलिक स्थिति तथा उसका जलवायु सबको देखते हुए लगता है कि ग्रामीण सभ्यता ही उसके भाग्य में लिखी है। उसके दोषों को सब कोई अच्छी तरह जानते हैं, परन्तु एक भी दोष ऐसा नहीं है जो दूर न किया जा सके। ग्रामीण सभ्यता का नाश करके उसके स्थान पर शहरी सभ्यता को बैठाना मुझे असंभव मालूम होता है। यह तभी संभव हो सकता है कि जब हम किसी तीव्र उपाय से अपनी जनसंख्या को 30 करोड़ से घटाकर 30 लाख अथवा कम से कम 3 करोड़ तक ले जाने को तैयार हों। इसलिए मैं इस बात को स्वीकार करके ही कोई उपाय सुझा सकता हूँ कि हमें वर्तमान ग्रामीण सभ्यता को जीवित रखना है और उसके माने हुए दोषों को दूर करने का प्रयत्न करना है।

एकता का महाकुंभ, युग परिवर्तन की आहट

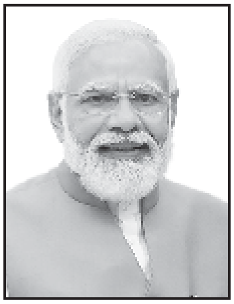

श्री नरेंद्र मोदी

महाकुंभ संपन्न हुआ...एकता का महायज्ञ संपन्न हुआ। जब एक राष्ट्र की चेतना जागृत होती है, जब वो सैकड़ों साल की गुलामी की मानसिकता के सारे बंधनों को तोड़कर नव चैतन्य के साथ हवा में सांस लेने लगता है, तो ऐसा ही दृश्य उपस्थित होता है, जैसा हमने 13 जनवरी के बाद से प्रयागराज में एकता के महाकुंभ में देखा।

22 जनवरी, 2024 को अयोध्या में राम मंदिर के प्राण प्रतिष्ठा समारोह में मैंने देवभक्ति से देशभक्ति की बात कही थी। प्रयागराज में महाकुंभ के दौरान सभी देवी-देवता जुटे, संत-महात्मा जुटे, बाल-वृद्ध जुटे, महिलाएं-युवा जुटे, और हमने देश की जागृत चेतना का साक्षात्कार किया। ये महाकुंभ एकता का महाकुंभ था, जहां 140 करोड़ देशवासियों की आस्था एक साथ एक समय में इस एक पर्व से आकर जुड़ गई थी।

तीर्थराज प्रयाग के इसी क्षेत्र में एकता, समरसता और प्रेम का पवित्र क्षेत्र श्रृंगवेरपुर भी है, जहां प्रभु श्रीराम और निषादराज का मिलन हुआ था। उनके मिलन का वो प्रसंग भी हमारे इतिहास में भक्ति और सद्भाव के संगम की तरह ही है। प्रयागराज का ये तीर्थ आज भी हमें एकता और समरसता की वो प्रेरणा देता है।

बीते 45 दिन, प्रतिदिन, मैंने देखा, कैसे देश के कोने-कोने से लाखों-लाख लोग संगम तट की ओर बढ़े जा रहे हैं। संगम पर स्नान की भावनाओं का ज्वार, लगातार बढ़ता ही रहा। हर श्रद्धालु बस एक ही धुन में था- संगम में स्नान। मां गंगा, यमुना, सरस्वती की त्रिवेणी हर श्रद्धालु को उमंग, ऊर्जा और विश्वास के भाव से भर रही थी।

प्रयागराज में हुआ महाकुंभ का ये आयोजन, आधुनिक युग के मैनेजमेंट प्रोफेशनल्स के लिए, प्लानिंग और पॉलिसी एक्सपर्ट्स के लिए, नए सिरे से अध्ययन का विषय बना है। आज पूरे विश्व में इस तरह के

22 जनवरी, 2024 को अयोध्या में राम मंदिर के प्राण प्रतिष्ठा समारोह में मैंने देवभक्ति से देशभक्ति की बात कही थी। प्रयागराज में महाकुंभ के दौरान सभी देवी-देवता जुटे, संत-महात्मा जुटे, बाल-वृद्ध जुटे, महिलाएं-युवा जुटे, और हमने देश की जागृत चेतना का साक्षात्कार किया। ये महाकुंभ एकता का महाकुंभ था, जहां 140 करोड़ देशवासियों की आस्था एक साथ एक समय...।

विराट आयोजन की कोई दूसरी तुलना नहीं है, ऐसा कोई दूसरा उदाहरण भी नहीं है।

पूरी दुनिया हैरान है कि कैसे एक नदी तट पर, त्रिवेणी संगम पर इतनी बड़ी संख्या में करोड़ों की संख्या में लोग जुटे। इन करोड़ों लोगों को ना औपचारिक निमंत्रण था, ना ही किस समय पहुंचना है, उसकी कोई पूर्व सूचना थी। बस, लोग महाकुंभ चल पड़े...और पवित्र संगम में डुबकी लगाकर धन्य हो गए।

मैं वो तस्वीरें भूल नहीं सकता...स्नान के बाद असीम आनंद और संतोष से भरे वो चेहरे नहीं भूल सकता। महिलाएं हों, बुजुर्ग हों, हमारे दिव्यांग जन हों, जिससे जो बन पड़ा, वो साधन करके संगम तक पहुंचा।

और मेरे लिए ये देखना बहुत ही सुखद रहा कि बहुत बड़ी संख्या में भारत की आज की युवा पीढ़ी प्रयागराज पहुंची। भारत के युवाओं का इस तरह महाकुंभ में हिस्सा लेने के लिए आगे आना, एक बहुत बड़ा संदेश है। इससे ये विश्वास दृढ़ होता है कि भारत की युवा पीढ़ी हमारे संस्कार और संस्कृति की वाहक है और इसे आगे ले जाने का दायित्व समझती है और इसे लेकर संकल्पित भी है, समर्पित भी है।

इस महाकुंभ में प्रयागराज पहुंचने वालों की संख्या ने निश्चित तौर पर एक नया रिकॉर्ड बनाया है। लेकिन इस महाकुंभ में हमने ये भी देखा कि जो प्रयाग नहीं पहुंच पाए, वो भी इस आयोजन से भाव-विभोर होकर जुड़े। कुंभ से लौटते हुए जो लोग त्रिवेणी तीर्थ जल अपने साथ लेकर गए, उस जल की कुछ बूंदों ने भी करोड़ों भक्तों को कुंभ स्नान जैसा ही पुण्य दिया। कितने ही लोगों का कुंभ से वापसी के बाद गांव-गांव में जो सत्कार हुआ, जिस तरह पूरे समाज ने उनके प्रति श्रद्धा से सिर झुकाया, वो अविस्मरणीय है।

ये कुछ ऐसा हुआ है, जो बीते कुछ दशकों में पहले कभी नहीं हुआ। ये कुछ ऐसा हुआ है, जो आने वाली कई-कई शताब्दियों की एक नींव रख गया है।

प्रयागराज में जितनी कल्पना की गई थी, उससे कहीं अधिक संख्या में श्रद्धालु वहां पहुंचे। इसकी एक वजह ये भी थी कि प्रशासन ने भी पुराने कुंभ के अनुभवों को देखते हुए ही अंदाजा लगाया था। लेकिन अमेरिका की आबादी के करीब दोगुने लोगों ने एकता के महाकुंभ में हिस्सा लिया, डुबकी लगाई।

आध्यात्मिक क्षेत्र में रिसर्च करने वाले लोग करोड़ों भारतवासियों के इस उत्साह पर अध्ययन करेंगे तो पाएंगे कि अपनी विरासत पर गौरव करने वाला भारत अब एक नई ऊर्जा के साथ आगे बढ़ रहा है। मैं मानता हूं, ये युग परिवर्तन की वो आहट है, जो भारत का नया भविष्य लिखने जा रही है।

इस महाकुंभ में प्रयागराज पहुंचने वालों की संख्या ने निश्चित तौर पर एक नया रिकॉर्ड बनाया है। लेकिन इस महाकुंभ में हमने ये भी देखा कि जो प्रयाग नहीं पहुंच पाए, वो भी इस आयोजन से भाव-विभोर होकर जुड़े। कुंभ से लौटते हुए जो लोग त्रिवेणी तीर्थ जल अपने साथ लेकर गए, उस जल की कुछ बूंदों ने भी करोड़ों भक्तों को कुंभ स्नान जैसा ही पुण्य दिया। कितने ही लोगों का कुंभ से वापसी के बाद गांव-गांव में जो सत्कार हुआ, जिस तरह पूरे समाज ने उनके प्रति श्रद्धा से सिर झुकाया, वो अविस्मरणीय है।

साथियों, महाकुंभ की इस परंपरा से, हजारों वर्षों से भारत की राष्ट्रीय चेतना को बल मिलता रहा है। हर पूर्णकुंभ में समाज की उस समय की परिस्थितियों पर ऋषियों-मुनियों, विद्वत् जनों द्वारा 45 दिनों तक मंथन होता था। इस मंथन में देश को, समाज को नए दिशा-निर्देश मिलते थे।

इसके बाद हर 6 वर्ष में अर्धकुंभ में परिस्थितियों और दिशा-निर्देशों की समीक्षा होती थी। 12 पूर्णकुंभ होते-होते, यानि 144 साल के अंतराल पर जो दिशा-निर्देश, जो परंपराएं पुरानी पड़ चुकी होती थीं, उन्हें त्याग दिया जाता था, आधुनिकता को स्वीकार किया जाता था और युगानुकूल परिवर्तन करके नए सिरे से नई परंपराओं को गढ़ा जाता था।

144 वर्षों के बाद होने वाले महाकुंभ में ऋषियों-मुनियों द्वारा, उस समय-काल और परिस्थितियों को देखते हुए नए संदेश भी दिए जाते थे। अब इस बार 144 वर्षों के बाद पड़े इस तरह के पूर्ण महाकुंभ ने भी हमें भारत की विकासयात्रा के नए अध्याय का संदेश दिया है। ये संदेश है- विकसित भारत का।

जिस तरह एकता के महाकुंभ में हर श्रद्धालु, चाहे वो गरीब हों या संपन्न हों, बाल हो या वृद्ध हो, देश से आया हो या विदेश से आया हो, गांव का हो या शहर का हो, पूर्व से हो या पश्चिम से हो, उत्तर से हो दक्षिण से हो, किसी भी जाति का हो, किसी भी विचारधारा का हो, सब एक महायज्ञ के लिए एकता के महाकुंभ में एक हो गए। एक भारत-श्रेष्ठ भारत का ये चिर स्मरणीय दृश्य, करोड़ों देशवासियों में आत्मविश्वास के साक्षात्कार का महापर्व बन गया। अब इसी तरह हमें एक होकर विकसित भारत के महायज्ञ के लिए जुट जाना है।

साथियों, आज मुझे वो प्रसंग भी याद आ रहा है जब बालक रूप में श्रीकृष्ण ने माता यशोदा को अपने मुख में ब्रह्मांड के दर्शन कराए थे। वैसे ही इस महाकुंभ में भारतवासियों ने और विश्व ने भारत के सामर्थ्य के विराट स्वरूप के दर्शन किए हैं। हमें अब इसी आत्मविश्वास से एक निष्ठ होकर, विकसित भारत के संकल्प को पूरा करने के लिए आगे बढ़ना है।

भारत की ये एक ऐसी शक्ति है, जिसके बारे में भक्ति आंदोलन में हमारे संतों ने राष्ट्र के हर कोने में अलख जगाई थी। विवेकानंद हों या श्री ऑरोबिंदो हों, हर किसी ने हमें इसके बारे में जागरूक किया था। इसकी अनुभूति गांधी जी ने भी आजादी के आंदोलन के समय की थी। आजादी के बाद भारत की इस शक्ति के विराट स्वरूप को यदि हमने जाना होता, और इस शक्ति को सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय की ओर मोड़ा होता, तो ये गुलामी के प्रभावों से बाहर निकलते भारत की बहुत बड़ी शक्ति बन जाती। लेकिन हम तब ये नहीं कर पाए। अब मुझे संतोष है, खुशी है कि जनता जनार्दन की यही शक्ति, विकसित भारत के लिए एकजुट हो रही है।

वेद से विवेकानंद तक और उपनिषद से उपग्रह तक, भारत की महान परंपराओं ने इस राष्ट्र को गढ़ा है। मेरी कामना है, एक नागरिक के नाते, अनन्य भक्ति भाव से, अपने पूर्वजों का, हमारे ऋषियों-मुनियों का पुण्य स्मरण करते हुए, एकता के महाकुंभ से हम नई प्रेरणा लेते हुए, नए संकल्पों को साथ लेकर चलें। हम एकता के महामंत्र को जीवन मंत्र बनाएं, देश सेवा में ही देव सेवा, जीव सेवा में ही शिव सेवा के भाव से स्वयं को समर्पित करें।

साथियों, जब मैं काशी चुनाव के लिए गया था, तो मेरे अंतरमन के भाव शब्दों में प्रकट हुए थे, और मैंने कहा था- मां गंगा ने मुझे बुलाया है। इसमें एक दायित्व बोध भी था, हमारी मां स्वरूपा नदियों की पवित्रता को लेकर, स्वच्छता को लेकर। प्रयागराज में भी गंगा-यमुना-सरस्वती के संगम पर मेरा ये संकल्प और दृढ़ हुआ है। गंगा जी, यमुना जी, हमारी नदियों की स्वच्छता हमारी जीवन यात्रा से जुड़ी है। हमारी जिम्मेदारी बनती है कि नदी चाहे छोटी हो या बड़ी, हर नदी को जीवनदायिनी मां का प्रतिरूप मानते हुए हम अपने यहां सुविधा के अनुसार, नदी उत्सव जरूर मनाएं। ये एकता का महाकुंभ हमें इस बात की प्रेरणा देकर गया है कि हम अपनी नदियों को निरंतर स्वच्छ रखें, इस अभियान को निरंतर मजबूत करते रहें।

मैं जानता हूं, इतना विशाल आयोजन आसान नहीं था। मैं प्रार्थना करता हूं मां गंगा से...मां यमुना से...मां सरस्वती से...हे मां हमारी आराधना में कुछ कमी रह गई हो तो क्षमा करिएगा...। जनता जनार्दन, जो मेरे लिए ईश्वर का ही स्वरूप है, श्रद्धालुओं की सेवा में भी अगर हमसे कुछ कमी रह गई हो, तो मैं जनता जनार्दन का भी क्षमाप्रार्थी हूं।

साथियों, श्रद्धा से भरे जो करोड़ों लोग प्रयाग पहुँचकर इस एकता के महाकुंभ का हिस्सा बने, उनकी सेवा का दायित्व भी श्रद्धा के सामर्थ्य से ही पूरा हुआ है। यूपी का सांसद होने के नाते मैं गर्व से कह सकता हूं कि योगी जी के नेतृत्व में शासन, प्रशासन और जनता ने मिलकर, इस एकता के महाकुंभ को सफल बनाया। केंद्र हो या राज्य हो, यहां ना कोई शासक था, ना कोई प्रशासक

था, हर कोई श्रद्धा भाव से भरा सेवक था। हमारे सफाईकर्मी, हमारे पुलिसकर्मी, नाविक साथी, वाहन चालक, भोजन बनाने वाले, सभी ने पूरी श्रद्धा और सेवा भाव से निरंतर काम करके इस महाकुंभ को सफल बनाया। विशेषकर, प्रयागराज के निवासियों ने इन 45 दिनों में तमाम परेशानियों को उठाकर भी जिस तरह श्रद्धालुओं की सेवा की है, वह अतुलनीय है। मैं प्रयागराज के सभी निवासियों का, यूपी की जनता का आभार व्यक्त करता हूं, अभिनंदन करता हूं।

साथियों, महाकुंभ के दृश्यों को देखकर, बहुत प्रारंभ से ही मेरे मन में जो भाव जगे, जो पिछले 45 दिनों में और अधिक पुष्ट हुए हैं, राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य को लेकर मेरी आस्था, अनेक गुना मजबूत हुई है।

140 करोड़ देशवासियों ने जिस तरह प्रयागराज में एकता के महाकुंभ को आज के विश्व की एक महान पहचान बना दिया, वो अद्‌भुत है।

देशवासियों के इस परिश्रम से, उनके प्रयास से, उनके संकल्प से अभीभूत मैं जल्द ही द्वादश ज्योतिर्लिंग में से प्रथम ज्योतिर्लिंग, श्री सोमनाथ के दर्शन करने जाऊंगा और श्रद्धा रूपी संकल्प पुष्प को समर्पित करते हुए हर भारतीय के लिए प्रार्थना करूंगा।

महाकुंभ का स्थूल स्वरूप महाशिवरात्रि को पूर्णता प्राप्त कर गया है। लेकिन मुझे विश्वास है, मां गंगा की अविरल धारा की तरह, महाकुंभ की आध्यात्मिक चेतना की धारा और एकता की धारा निरंतर बहती रहेगी।

संस्मरण

महात्मा गांधी: पहली मुलाकात

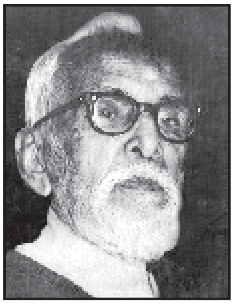

कर्मवीर पं. सुन्दर लाल

सन् 1915 की बात है।

मैं सोलन में था। हिन्दुस्तान की राजनीति में उस समय दो ही दल थे। एक दल इंगलिस्तान के बादशाह की वफादारी की कसमें खाता था, अंग्रेज सरकार के रहते अपने देश को शिक्षा प्रचार और समाज सुधार के जरिये ऊँचा ले जाना और मजबूत करना चाहता था, और दरखास्तों और अरजी-परचों के जरिये अंग्रेजों से राजकाज में छोटे-मोटे अधिकार और नौकरियाँ लेकर अपने को सफल मानता था। काँग्रेस तब इसी दल के हाथों में थी। दूसरा गरम दल स्वदेशी, अंग्रेजी माल के बायकाट, कौमी तालीम और 'स्वराज' की प्यास लोगों में पैदा करके बम और पिस्तौल के जरिये इधर-उधर अंग्रेज हाकिमों की हत्या करके और ख़जानों को लूटकर अंग्रेजों को इस देश से निकाल देने की आशा करता था।

इस दूसरे दल का जन्म बंगाल के विभाजन के साथ-साथ सन् 1905 में हुआ था। इस दल में बहुत से जान पर खेलने वाले नौजवान थे। उन्होंने अपनी समितियाँ बनाई। कई अंग्रेजों और उनके हिन्दुस्तानी मददगारों की जगह-जगह हत्याएँ कीं, ख़जानों और हथियारों के गोदामों पर डाके डाले। मालूम होता है अच्छी और बुरी सभी चीजें अपने-अपने समय पर और अपनी जगह कुछ न कुछ उपयोग रखती हैं। शायद अच्छे और बुरे फरक भी अन्धेरे और उजाले के फरक की तरह मौके और महल के ही फरक हैं। मुझे अच्छी तरह याद है सन् 1907 से पहले अंग्रेजों का दबदबा और उनका घमण्ड कितना गहरा था और सारे देश पर किस तरह छाया हुआ था। बड़े-से-बड़े हिन्दुस्तानी के लिये पहले या दूसरे दर्जे के रेल के किसी ऐसे डिब्बे में घुसने की हिम्मत करना जिसमें कोई अंग्रेज पहले से बैठा हो एक गैर मामूली बात थी और कोई भी छोटे से छोटा अंग्रेज ऐसे मौके पर किसी बड़े-से-बडे हिन्दुस्तानी का खुले अपमान कर सकता था।

सर सैयद अहमद के साथ इसी तरह का सलूक करने की कोशिश की गई थी। वे इटावा से इलाहाबाद आ रहे थे। उनके

इस दूसरे दल का जन्म बंगाल के विभाजन के साथ-साथ सन् 1905 में हुआ था। इस दल में बहुत से जान पर खेलने वाले नौजवान थे। उन्होंने अपनी समितियाँ बनाई। कई अंग्रेजों और उनके हिन्दुस्तानी मददगारों की जगह-जगह हत्याएँ कीं, ख़जानों और हथियारों के गोदामों पर डाके डाले। मालूम होता है अच्छी और बुरी सभी चीजें...।

मुलाजिम ने पहले दरजे में उनका सामान रखा। उसके बाद एक अंग्रेज आया उसने देखा कि फर्स्ट क्लास के डब्बे में सिर्फ एक हिन्दुस्तानी का सामान रखा है। उसने कुली को हुक्म दिया कि डब्बे में रखा सामान नीचे उतार दे और उनका सामान डब्बे में रखे। अपना सामान डब्बे में रखवाकर अंग्रेज चाय पीने चला गया। सर सैयद के मुलाजिम ने जाकर इस वाकये की सर सैयद से शिकायत की। सर सैयद ने हुकुम दिया कि अंग्रेज का सामान प्लेटफार्म के दूसरे तरफ फेंक दो। ऐसा ही किया गया। अंग्रेज जब लौटा तो किसी डब्बे में उसे अपना सामान दिखाई नहीं दिया। लेकिन उसने देखा कि जो सामान उसने उतरवा दिया था वह फिर डब्बे में रखा है। जब वह डब्बे में चढ़ा तो उसने देखा कि उसका सामान रेल की लाइन में नीचे बिखरा पड़ा है। वह आग बगूला हो गया।

सर सैयद अपने प्रशंसकों के साथ अपने डब्बे के बाहर प्लेटफार्म पर टहल रहे थे। साहब को आग बगूला देखकर पूछा– 'साहब, क्या माजरा है?'

साहब ने बताया उसका सामान नीचे पड़ा है। सर सैयद ने कहा– साहब इस डब्बे की अजब खासियत है कि जो अपना सामान इस में रखकर जाता है उसका सामान तो नीचे आ जाता है और दूसरे का ऊपर। मेरे साथ यही हादसा हुआ था।

अंग्रेज लाल–पीला होकर बोला– तुम जानटा है हम हाइकोर्ट का जज है?

सर सैयद – साहब तुम जानटा है हम हाइकोर्ट जज का बाप है?

सर सैयद के बेटे सैयद महमूद उस समय इलाहाबाद हाइकोर्ट के सीनियर जज थे।

अंग्रेज स्टेशन मास्टर ने आकर अंग्रेज जज से सर सैयद का जब परिचय कराया तो वह बहुत शर्मिंदा होकर माफी मांगता रहा।

सन् 1907 के खुदीराम बोस के मुजफ्फरपुर बम कांड ने इस हालत को मानो जादू की तरह एक रात में बदल दिया। अंग्रेज समझ गये कि यह कीड़ा काट भी सकता है। हिन्दुस्तानियों को इधर से उधर तक निराशा की अंधियारी घटा में आशा की एक बिजली सी कौंधती हुई दिखाई पड़ी। रेल के डिब्बों में अंग्रेज हिन्दुस्तानियों से संभलकर बैठने लगे। उस आन्दोलन का सबसे बड़ा अड्डा कलकत्ता था। कलकत्ते की उस नाखुशगवार हवा से बाहर निकलने के लिये अंग्रेजों ने दिल्ली को राजधानी बनाया। दिल्ली में बड़े शानदार जलूस के साथ दाखिल होते हुये जब उन्होंने मुगलों के तीन सौ बरस के रोब को अपने ऊपर ओढ़ना चाहा तो सन् 1912 के लार्ड हार्डिंग्ज के बम ने एकदम अंग्रेज कौम की उस सारी शान को किरकिरा कर दिया। सारे हिन्दुस्तान में एक लहर सी दौड़ गई कि दिल्ली को राजधानी बनाना अंग्रेज सरकार को रास नहीं आयेगा। बम और पिस्तौल की राह ने कुछ देर के लिये अपना कुछ न कुछ चमत्कार दिखलाया, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

पर वह चमत्कार चन्द रोज से ज्यादा न ठहर सका। दिल्ली बम कांड के बाद ही सरकार ने जो चौतरफा दमन शुरू किया उससे मुल्क में फिर एक बार अंधियारी छा गई और बढ़ती गई। उसके बाद कुछ हिम्मत वाले लोगों ने इधर–उधर इसी तरह की चीजें जारी रखीं, पर पाँच–सात बरस के तजरबे से उस दल के विचारवान लोगों ने देख लिया कि इन तरीकों से और जो कुछ भी हम कर पायें या न कर पायें अंग्रेजी राज देश से नहीं मिटाया जा सकता। एक–एक गुप्त हत्या को ठीक–ठाक करने में बीस–बीस और तीस–तीस आदमियों की जरूरत पड़ती थी। सफलता हो भी गई तो पुलिस के सुराग लगाने पर करीब–करीब नामुमकिन था कि इनमें से कोई न कोई फूट न जावे। बरसों मुकदमा चलने के बाद एक जान के बदले बीस–बीस और तीस–तीस देश भक्तों से जिन्दगी भर के लिये हाथ धो बैठना पड़ता था। जनता में जो लोग इनके काम से अन्दर–अन्दर हमदर्दी भी रखते थे वह इन सजाओं को देखकर सहम जाते थे। डकैतियों में एक–एक डकैती पर कभी–कभी इतना खर्च हो जाता था जितना वसूल न हो पाता था, फिर जो लोग जान पर खेल कर डकैती डालते थे उन्हीं में रुपये पैसे या हथियारों के ठीक–ठीक इस्तेमाल पर वह सिर–फुटौवल होती थी कि जिस से दिल फट जाते थे। पुलिस को अगर पता चलता था कि इस दल का कोई आदमी फलाँ गाँव में ठहरा था तो उस गाँव के लोगों पर वह मारें पड़ती थीं कि एक–एक

गाँववाला पुलिस की चौकी पर जाकर नाक रगड़ता था और सरकार की वफादारी की कस्में खाने लगता था।

दल के समझदार लोगों को दिखाई दे गया कि जो अंग्रेज कौम एक जंग में अपने हजारों आदमी कटवा सकती है और लाखों रूपये गोले बारूद पर खर्च कर सकती है वह इक्का–दुक्का आदमियों की साल दो साल के अन्दर जानें गँवा कर और वह भी इतनी जबरदस्त कीमत वसूल करके सैकड़ों बरस तक भी इस उपजाऊ देश को छोड़कर नहीं जा सकती थी। कुछ बरसों के तजरबे ने अच्छी तरह दिखा दिया कि यह रास्ता थोड़ा–बहुत अंग्रेजों के दिलों में हिन्दुस्तानियों का डर भले ही पैदा कर दे, न जनता में जान फूंक सकता था, न उन्हें आजादी की लड़ाई के लिये तैयार कर सकता था और न देश को आजाद करा सकता था। इस दल के आम लोगों में एक गहरी निराशा छाई हुई थी।

सन् 1908 में लोकमान्य तिलक के कारावास ने इस दल को खासा धक्का पहुंचाया था। सन् 1910 में अरबिन्द बाबू के कलकत्ता छोड़ कर पांडिचेरी जाने से दल की हिम्मतें और पस्त हो गई। सन् 1912 के बाद दल के बहुत से लोग इधर–उधर आसाम की सरहद पर या हिमालय की तराई में छिपे दबे किसी तरह दिन काट रहे थे। जिस गली से वह चल रहे थे वह आगे बन्द दिखाई देती थी और दूसरा कोई रास्ता आजादी की मंजिल तक पहुंचने का दिखाई न देता था। इसी सिलसिले में सन् 1912 से 1916 तक के दिन मैंने सोलन में काटे। दिल के अन्दर गहरी निराशा थी। जापान, रूस, आयरलैंड और फ्रान्स के इतिहासों के खूब पन्ने उलटने पर अपने देश की आजादी का कोई रास्ता दिखाई न दिया। इतने में सुनने में आया कि मोहनदास गांधी इसी साल हिन्दुस्तान आये हैं। दक्षिण अफ्रीका में वह वहां के हिन्दुस्तानियों के अधिकारों के लिये लड़ते रहे हैं और कामयाबी के साथ लड़ते रहे हैं। वहां की हिन्दुस्तानी जनता ने भी इनका खूब साथ दिया है। कुदरती तौर पर उनसे मिलने की ख़्वाहिश दिल में पैदा हुई इस उम्मीद में कि उनकी सलाह से शायद अपने देश की आजादी के लिये कोई आगे का रास्ता सूझे।

मैं अकेला सोलन से चलकर सीधा अहमदाबाद पहुंचा। पता लगाया तो मालूम हुआ कि गांधी शहर के बाहर किसी छोटे से बँगले में रह रहे हैं। मैं वहां पहुंचा। मेरी गांधीजी से यह पहली मुलाकात थी। मुझे अब तक याद है वह एक छोटे से कमरे के अन्दर, जिसका फर्श बीच–बीच में उखड़ा हुआ था, टाट का एक छोटा सा टुकड़ा बिछाए उस पर बैठे थे। एक छोटी सी, घुटनों तक की धोती बाँधे हुये थे। बाकी बदन नंगा था। एक छोटी सी लड़की, शायद पाँच–छः बरस की रही होगी, उनके आगे बैठी थी। उसी सज धज के एक दो और आदमी कमरे के पास से आते–जाते दिखाई दिये। मैं कमरे में घुसा। मालूम करके कि यही श्री गांधी हैं कुछ अचम्भा सा लगा। उन्होंने टाट का एक टुकड़ा मेरी तरफ करके मुझे बैठने को कहा। मैं बैठ गया, बातें शुरू हुई।

मैंने अपना और उस समय की देश की आजादी की कोशिशों का हाल, जो मैं जानता था, सब उन्हें तफ्सील से कह सुनाया। मालूम होता था मेरी बातें बड़े ध्यान से सुन रहे हैं। बीच–बीच में प्रश्न भी पूछते जाते थे। बातचीत में कई घण्टे लगे। दोपहर से शाम होने आई। कभी कभी वह उठकर दूसरा काम भी करते रहे पर जब

जब मैंने उनसे उनकी राय पूछी और उनसे आगे के लिये सलाह लेनी चाही तो लगभग हर बात पर वह कुछ ऐसा जवाब देते थे– 'मैं तो राजनीति नहीं समझता। मैं तो धरम जानता हूँ। सबको अपने धरम पर कायम रहना चाहिये। किसी को मारना पाप है।' मैंने बार–बार और तरह–तरह से उनसे पूछना चाहा कि आखिर हिन्दुस्तान को आजादी कैसे मिल सकती है? हर बार वह कोई न कोई इसी तरह का फिकरा दोहरा देते थे। मुझ पर यह असर जरूर पड़ा कि वह मुझमें और मेरी बातों में रस ले रहे थे। उनकी आँखों में मुझे बार–बार एक अनोखा स्नेह और अपनापन दिखाई देता था। मालूम होता था वह चाहते थे मैं और ठहरूं और उनसे बातें करूँ। पर बार–बार उनके वही फिकरे सुनकर 'मैं तो धरम जानता हूं, पाप तो नहीं करना चाहिये, सब को अपना धरम पालना चाहिये,' मैं उक्ता गया। मेरे इस पूछने पर भी कि आखिर धर्म है क्या? वह मेरी तसल्ली का जवाब न दे सके। मैं सोचने लगा कि धर्म–अधर्म के जिन दकियानूसी ख्यालों ने इस मुल्क को बरबाद किया है और उसे गुलामी के यह दिन दिखाये हैं वही ख्याल इन के अन्दर कूट–कूट कर भरे हुये हैं। मैंने मन में तय कर लिया कि शाम की गाड़ी से सोलन लौट जाया जाय। आखिर में मैंने उनसे कहा कि आज ही मैं सोलन वापिस जा रहा हूँ। मैंने उनसे यह भी साफ कह दिया कि मैं आपसे disappointed और /disgusted यानी निराश होकर और बेजार होकर जा रहा हूँ। मुझे याद है कि मैंने अंग्रेजी के यही दोनों शब्द उपयोग किये थे। चलते हुए मैंने उनसे यह भी कहा – 'मेरी आप से एक ही प्रार्थना है, ईश्वर के लिये आप और जो चाहे कीजिये, हिन्दुस्तान की राजनीति में दखल न दीजिये, नहीं तो आप इस देश को और मिटा देंगे।' वह सुनकर वे मुस्कराये और कहने लगे – 'अच्छा, अभी तो और फिर भी आओगे'।

मैंने – 'देखिये, नमस्कार !' कह कर बिदा ली। स्टेशन आकर सोलन के लिये वापिस चल दिया। मैं रास्ते भर यही सोचता आया कि इतना लम्बा सफर और इतना खर्च सब बेकार गया। सोलन पहुंचकर मैंने इसी मजमून के खत अपने दोस्तों को लिखे ।

कुछ दिनों के बाद मुझे मालूम हुआ कि गांधीजी जब पहले–पहल दक्खिन अफ्रीका से हिन्दुस्तान आये थे तब मिस्टर गोखले ने, जिन्हें गांधीजी अपने गुरू की तरह मानते थे, यह वायदा ले लिया था कि वह यहाँ आने के एक साल बाद तक इस देश की हालत को चुपचाप बैठकर देखेंगे और किसी तरह का कोई अमली कदम कम से कम सालभर तक नहीं उठायेंगे। मैं जब गांधीजी से पहली मरतबा मिला तो यह उसी एक साल के अन्दर का दिन था।

पहली मुलाकात हुये लगभग दो साल बीत चुके थे। पहला महायुद्ध खतम होने पर आ रहा था। जो हजारों हिन्दुस्तानी सिपाही योरप के लड़ाई के मैदानों से लौट–लौट कर आ रहे थे और जो खबरें लड़ाई की देश भर में फैल रही थीं उनकी बदौलत एक नई उमंग और आजादी की नई लगन देशभर में फैलती जा रही थी। मैं पहाड़ छोड़ कर इलाहाबाद आ चुका था। अभी आगे के काम के लिये दोस्तों से सलाह ही कर रहा था कि इतने में सुना कि गांधीजी ने चम्पारन में वहाँ के गरीब किसानों पर निलहे गोरों के अत्याचारों के खिलाफ आन्दोलन शुरू किया है। गांधीजी के अपने पहले तजरबे से मुझे इतना जोश भी नहीं आ सका कि बिहार, जो इलाहाबाद से बहुत दूर न था, जाकर आन्दोलन को देखें।

थोड़े दिन और बीते। सुना कि गुजरात में खेड़ा जिला के किसानों की फसलें खराब हो गई थीं और फिर भी उनसे जबर्दस्ती लगान वसूल किया जा रहा है। इस अन्याय के खिलाफ गांधीजी ने गुजरात में एक नया आन्दोलन खड़ा किया है।

मैं गुजरात पहुँचा। गांधीजी उस समय नडियाड़ के अनाथालय में ठहरे हुए थे। मैं उनसे वहीं मिलने के लिये गया। मेरी उनकी यह दूसरी मुलाकात थी। सुबह का वक्त था। गांधीजी अनाथालय के हाल के एक कोने में फर्श के ऊपर एक गद्दा बिछाये बैठे हुये थे। आठ दस काम करने वाले उनके दाएँ बाएँ और सामने थे। उनमें से दो की याद मेरे अन्दर अभी तक बाकी है। शंकरलाल बैंकर और दूसरे वल्लभ भाई पटेल। गांधीजी में और उनमें बातें हो रही थीं, कुछ गुजराती में और कुछ हिन्दुस्तानी में मिली जुली। मैंने जाकर नमस्कार किया। गांधी जी ने मुझे पहचान लिया। पूछा कि मैं वही हूँ न जो उनसे अहमदाबाद में मिल चुका था। मेरे हाँ कहने पर उन्होंने प्रेम के साथ मुझे अपने पास

बैठने का इशारा किया। मैं बैठ गया। उनकी बातें सुनने लगा। लगभग दो घंटे बातें होती रहीं। मैं गुजराती और हिन्दुस्तानी दोनों समझ रहा था। मुझे अब उन बातों की तफ्सील तो याद नहीं रही पर इतना अच्छी तरह याद है कि दो घंटे तक लगातार गांधी जी उन सब काम करने वालों को तरह तरह से यही समझाते रहे कि धर्म पर कायम रहना, हिंसा नहीं करना, किसी को मारना नहीं, किसी को दुख भी नहीं पहुँचाना, अन्यायियों के साथ भी दिल में प्रेम रखना और प्रेम के साथ ही उनसे बरतना आदि-आदि। मैं ध्यान से सुनता रहा। कभी-कभी मैंने बात को साफ करने के लिये कोई छोटा सा सवाल भी कर लिया। हर बात का वही जवाब। उन्हें इतनी इस बात की चिन्ता नहीं थी कि किसानों का अन्याय दूर हो जितनी इसकी कि किसी भी सरकारी आदमी या सरकारी नौकर को जरा सा भी दुख पहुंचे। मेरे मन में गांधी जी की तरफ से फिर वही भाव उभरे जो दो साल पहले पैदा हुये थे। दो तीन घंटे की बातें सुनकर मुझ में फिर उनकी तरफ से निराशा ही जागी। खाने का वक्त आ रहा था। सब खड़े हो गए। मैं भी खड़ा हो गया। मैंने गांधी जी से कहा – 'मैं पहले भी आप से मिलने आया था और इतने दिनों बाद फिर आया हूँ। अब मैं इसी दोपहर की गाड़ी से लौट जाऊँगा। सिर्फ इतना अर्ज कर दूँ कि मैं उतना ही निराश और बेजार जा रहा हूँ जितना पहली बार।'

गांधी जी फिर मुस्कराए! कुछ और लोग भी देख रहे थे। मुझसे कहा- 'अभी और ठहरो!' मैंने जवाब दिया- 'मुझे ठहरने से कोई फायदा दिखाई नहीं देता।' गांधी जी ने कहा 'इतनी दूर से आये हो मेरे कहने से कुछ देर और ठहर जाओ। तुम भी खाना खा लो, मैं भी खा लूँ। फिर दोपहर को मैं तुम्हें बुलाऊँगा, तब तुमसे बातें होंगी।' मैंने उनकी आज्ञा मान ली।

दोपहर बाद उन्होंने मुझे ऊपर के एक कमरे में बुलाया। वह और मैं ही थे। फर्श पर बैठकर लगभग दो घंटे तक फिर बातें होती रहीं। वह सब बातें मुझे अब याद नहीं रहीं। इतना याद है कि गांधी जी को हिन्दुस्तान भर की एक-एक छावनी के बारे में यह जानकारी थी कि किसमें कितनी फौजें हैं, कितनी देसी और कितनी अंग्रेजी, और कितने हथियार हैं, और कहाँ कोई बगावत या आन्दोलन खड़ा हो जाने पर सरकार कितना मुकाबला कर सकती है। उन्होंने इन चीजों को अच्छी तरह पढ़ रखा था। फौजों के इधर उधर आने जाने को भी वह ध्यान से पढ़ते सुनते रहते थे। मुझ पर यह भी असर पड़ा कि किसी एक जगह को अपने आन्दोलन के लिये या सत्याग्रह के लिये चुनते समय यह सब चीजें उनकी निगाह में रहती हैं। उस दिन की दो घंटे की बात-चीत से दो बातें मेरे दिल पर जम गई। एक यह कि अंग्रेज सरकार की हिंसा करने की शक्ति की जितनी अच्छी जानकारी गांधी जी को थी उतनी हमारे पुराने क्रान्तिकारी दल में किसी को न थी। दूसरी यह कि विदेशी हुकूमत से नफरत और मुल्क की आजादी के लिये तड़प भी गांधी जी में किसी दूसरे से कम न थी। कुछ ऐसा भी लगा कि उनकी धर्म, पाप और अहिंसा की बातें केवल वक्त की जरूरत थीं और वह बड़ी मेहनत के साथ कोई नया रास्ता ढूँढ़ रहे थे या बना रहे थे।

मेरा दिल बदला, मैं गहरे सोच में पड़ गया। फिर भी अधिक न ठहरा। शाम की गाड़ी से मैं इलाहाबाद के लिये रवाना हो गया। इस तरह मेरी गांधी जी की दूसरी मुलाकात खतम हुई।

पहली जंग के खतम होने से पहले-पहले देश में नई जान और नई उमंगें पैदा हो रही थीं। गांधी जी के छोटे-छोटे नये तजुरबे भी बहुत सों का ध्यान अपनी तरफ खींच रहे थे। सरकार इन सब बातों को देख और समझ रही थी। बढ़ती हुई बेचैनी और आजादी की प्यास को कुचलने की तरकीबें सोची जाने लगीं। देश भर के कुछ चुने हुए काम करने वालों या आजादी के प्रेमियों की एक फेहरिस्त तैयार करके हर एक का थोड़ा थोड़ा हाल देते हुये अंग्रेजी में एक छोटी सी किताब तैयार की गई और गुप्त रीति से उसे हिन्दुस्तान भर के सब अंग्रेज अफसरों के हाथों में पहुँचाया गया। मुझे मालूम है कि बाज-बाज जिलों में जहां हिन्दुस्तानी डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट था उसे उस किताब के दर्शन नहीं कराये गये और अंग्रेज ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेटों तक को वह किताब पढ़ने को दी गई। मुझे उस किताब को देखने और उसमें अपना नाम और हाल पढ़ने का अवसर मिला था। अब सवाल था कि इन सबको और इसी तरह के औरों को, अंग्रेजी राज की राह के रोड़ों को किस तरह हटाया जाये। खुर्राट और तजुरबेकार

अफसरों की एक कमेटी मुकर्रर हुई। उसने एक बहुत बड़ी रिपोर्ट इस बात की तैयार की कि अंग्रेजी राज के खिलाफ कब-कब, कहाँ-कहाँ और किस-किस तरह बगावत के खयाल पैदा हुये और फैले और कहाँ क्या-क्या कोशिशें हुईं। इस रिपोर्ट के आधार पर और कमेटी की सलाह के मुताबिक बड़े लाट की कौंसिल में दो नये कानून पेश किये गये। यह दोनों कानून रौलट ऐक्ट कहलाते हैं और देश में उस समय 'काले कानूनों' के नाम से मशहूर थे। इन नये कानूनों में देश के छोटे से छोटे पुलिस अफसरों को वह जबरदस्त अधिकार दे दिये गये जिनके रहते देश के अन्दर नरम या गरम किसी तरह के राजकाजी आन्दोलन का चल सकना नामुमकिन था। नरम दल के बड़े से बड़े नेता भी इन्हें देखकर हैरानी, असन्तोष और गुस्से से भर गये। लाट साहब की कौंसिल के अन्दर इन कानूनों के खिलाफ माननीय श्रीनिवास शास्त्री और मिस्टर एम.ए. जिन्नाह की जो जोरदार तकरीरें हुईं वह एक बार सारे देश में गूँज गईं। कानून पास हो गये। सारा देश गुस्से और बेचैनी से भर गया। गांधी जी कैसे चुप रह सकते थे? उनके लिये यह भगवान का दिया हुआ वरदान था।

इस गरमा-गरमी के शुरू के दिनों में गांधी जी अहमदाबाद में सख्त बीमार पड़े हुये थे। कहा जाता है कि एक बार उनके बचने की भी आशा कम दिखाई देती थी। हो सकता है कि उनकी बीमारी शरीर की कम और मन की अधिक रही हो। हो सकता है कि उनकी आत्मा अन्दर से कर्तव्य-पथ का दरवाजा खोजने के लिये बेचैन रही हो। जो हो, देश के रोग के सामने वह अपना रोग भूल गये। अहमदाबाद से ही उन्होंने नये काले कानूनों के खिलाफ सत्याग्रह करने यानी खुले तौर पर सरकार का कोई न कोई कानून तोड़ने और उसकी सजा में जेल जाने का प्रोग्राम देश के सामने रक्खा। देश भर के लिये एक सत्याग्रह सभा बनाई गई जिसके गांधी जी सदर थे। गांधी जी ने खुद बम्बई जाकर जब्त किताबों को खुले आम बेचकर सत्याग्रह शुरू किया। देश पर इसका कितना गहरा असर हुआ इसका पहले से किसी को गुमान भी न हो सकता था और अब भी अन्दाज लगा सकना कठिन है। 6 अप्रैल 1919 के लिये हड़ताल का ऐलान हो चुका था। गांधी जी का उससे मकसद यह था कि सरकार के खिलाफ सत्याग्रह शुरू करने से पहले लोग उपवास और प्रार्थनाओं के जरिये अपनी आत्मा को शुद्ध कर लें। बड़े बड़ों का अन्दाजा यह था कि मुमकिन है बड़े-बड़े शहरों में आधी पड़ती हड़ताल हो जावे। पर यह एक इतिहासी घटना है कि उस दिन हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक दूर से दूर किसी गाँव में भी हल नहीं चला।

अहमदाबाद से खबर आते ही इलाहाबाद होमरूल लीग के दफ्तर में, जिसका मैं एक मन्त्री था, मैंने कुछ मित्रों को जमा किया। एक यू.पी. सत्याग्रह सभा कायम हुई। गांधी जी को उसका सदर रखने की तजवीज हुई। मैं और मंजरअली सोख्ता उसके सेक्रेटरी बने। अहमदाबाद जाकर गांधी जी को इसकी इत्तला देने, उनसे हिदायतें लेने और सदर बनाने के लिये राजी करने का काम मुझे सौंपा गया।

इस बीच एक और छोटी सी घटना हुई। गांधी जी ने देश भर के सत्याग्रहियों के लिये एक प्रतिज्ञा पत्र निकाला था जो सब अखबारों में छप चुका था। यू.पी. सत्याग्रह सभा के मेम्बरों के लिये भी इस प्रतिज्ञा पत्र पर दस्तखत करना जरूरी था। हम में से कुछ लोग चाहते थे कि पंडित मोतीलाल नेहरू यू.पी. सत्याग्रह सभा के नायब सदर हों। पंडित मोतीलाल जी को गांधी जी का प्रतिज्ञा पत्र पसन्द न था। वह कानून तोड़ने और जेल जाने को तैयार थे, पर अपनी नकेल दूसरे के हाथों में देना पसन्द न करते थे। कुछ साथियों की सलाह से एक दूसरा प्रतिज्ञा पत्र लिखा गया जिसे पंडित मोतीलाल जी ने पसन्द कर लिया। वह उस पर दस्तखत करने को राजी हो गये। तय हुआ कि यू.पी. सत्याग्रह सभा का जो मेम्बर चाहे गांधी जी वाले प्रतिज्ञा पत्र पर दस्तखत कर दे और जो चाहे इस नये प्रतिज्ञा पत्र पर। दोनों बराबर के मेम्बर समझे जांय। पर इस सबके लिये भी गांधी जी की सलाह और इजाजत जरूरी थी। यह इजाजत हासिल करना भी मेरे सुपुर्द हुआ।

गांधी जी से मिलने के लिये मैं अहमदाबाद पहुँचा। हाल ही में अहमदाबाद और वीरमगाम में दंगे हो चुके थे। इन दंगों के बहुत से घायल अहमदाबाद के अस्पतालों में पड़े हुये थे। मैं बैठकर इन्तजार करने लगा। थोड़ी देर बाद गांधी जी आये। मालूम होता था बेहद थके हुये हैं। पाँव लड़खड़ाते से पड़ रहे थे। मैंने नमस्कार किया। मुझे

देखकर खुश हुये, पूछा कब आये? मेरा जवाब सुनकर सीधे जाकर उसी दालान में एक चारपाई पर चित लेट गये। किसी ने उनके इशारे पर तह किया हुआ एक भीगा कपड़ा उनके सर और माथे पर रख दिया। मैं जरा दूर बैठकर देखता रहा। चाहता था वह थोड़ा आराम कर लें तो पास पहुँचूँ। एक पल के अन्दर उन्होंने मेरी तरफ को आँख फेरी और इशारा करके अपनी चारपाई के पास बुलाया। मैं पास जाकर बैठ गया। कहने लगे 'सब हाल सुनाओ।' मैंने जवाब दिया– 'अभी आप बहुत थके हैं जरा आराम कर लीजिये।' जवाब मिला 'नहीं, शुरू कर दो।'

मैंने सारा हाल कह सुनाया। केवल पंडित मोतीलाल और दूसरे प्रतिज्ञा पत्र की बात अभी नहीं कही। इसके बाद मैंने कहा – 'आप हमारी यू.पी. सत्याग्रह कमेटी के सदर बनना मंजूर कीजिये।' उन्होंने जवाब दिया – 'मुझे बड़ी खुशी से मंजूर है। मैं तुम्हारी सभा का सदर बन गया। तुम सेक्रेटरी हो न?' मैंने कहा– 'हाँ, मैं और मंजरअली दो सेक्रेटरी हैं।'

गांधी जी ने पसन्द किया और कहा– 'काम शुरू कर दो।' इससे कुछ पहले गांधी जी ने देश भर से उन लोगों के नाम माँगे थे जो अपने आप को कानून तोड़कर जेल जाने के लिये पेश करें। इस पर मैं और मंजरअली दोनों अपने नाम भेज चुके थे। यह नाम बम्बई के अखबारों में छपते जाते थे।

गांधी जी से उनके सदर होने और अपने और मंजरअली के सेक्रेटरी होने की बात तय करने के बाद मैंने उनसे दूसरे प्रतिज्ञा पत्र की बात छेड़ी। मैंने उनसे कहा 'पंडित मोतीलाल जी को आपका प्रतिज्ञा पत्र मंजूर नहीं। उनके लिये और उन जैसे विचार वालों के लिये हमने एक दूसरा प्रतिज्ञा पत्र बना लिया है।'

यहाँ मैंने उन्हें दूसरा प्रतिज्ञा पत्र पढ़ कर सुनाया और कहा– 'यह पंडित मोतीलाल जी को मंजूर है। हम चाहते हैं वह हमारी सभा के नायब सदर हो जायँ। इसलिये हमने सोचा है कि जो आदमी दोनों में किसी भी एक प्रतिज्ञा पत्र पर दस्तखत कर दे वह हमारी सभा का मेम्बर बन सके। मोतीलाल जी के आ जाने से जवाहरलाल जी का आना आसान हो जायेगा, और फिर शायद हम तीन सेक्रेटरी हो जायेंगे।'

मैंने देखा कि मेरे यह सब बात कहते–कहते गांधी जी के चेहरे का रंग बदल गया। उन्होंने तुरन्त मेरी बात बीच में ही काट कर काफी दुख के साथ जवाब दिया– 'मैं तुम्हारी सभा का सदर नहीं बनूंगा। मैं अपनी मंजूरी वापिस लेता हूँ। तुम तो मेरे सत्याग्रह को बिलकुल ही नहीं समझे। अब जाओ, जो ठीक समझो करो। मैं सदर नहीं। यह मेरा सत्याग्रह नहीं है।'

मैं सुनकर घबरा गया और हल्के से उनकी इस नाराजगी का कारण पूछा। उन्होंने फिर कहा– 'मुझे कोई दूसरा प्रतिज्ञा–पत्र नहीं चाहिये। मुझे पंडित मोतीलाल जी नहीं चाहिये। मुझे कोई बड़ा आदमी नहीं चाहिये। इलाहाबाद के अगर चार सफाई–मजदूर मिलकर मेरे प्रतिज्ञा–पत्र पर दस्तखत कर देंगे और अपनी सत्याग्रह सभा बनायेंगे तो मैं उनका सदर बन जाऊँगा। तुम्हारी सभा का सदर बनना मुझे नामंजूर है। तुम तो सत्याग्रह को समझे ही नहीं।'

अब मैंने उनसे कहा – 'आप दुखी न होइये। मेरी अपनी निजी राय भी यही थी जो आपकी है। कुछ और साथियों की राय वह थी जिस पर आपको इतना दुख हुआ। मैंने पहले से आप को अपना और दूसरों का यह फर्क बताना ठीक नहीं समझा। अब हम वही करेंगे जो आप चाहते हैं। आपके बिना सत्याग्रह कैसा? आप ही रास्ता बतायें तो हम चल सकते हैं। दूसरा प्रतिज्ञा–पत्र नहीं होगा। और कोई आये चाहे न आये।'

गांधी जी ने थोड़ा सोचा। मेरी तरफ बार–बार देखा, एक दो और छोटी–मोटी बातें हुई। उनका दुख कम हुआ, फिर खुश होकर कहा– 'जाओ काम करो, मैं तुम्हारा सदर और तुम सेक्रेटरी।'

उसी दिन शाम को या अगले दिन मैं इलाहाबाद के लिये चल पड़ा। यू.पी. सत्याग्रह सभा का विधान छप गया। गांधी जी सदर, मैं और मंजरअली सेक्रेटरी। मेम्बरों की फेहरिस्त शायद तीस के करीब रही होगी, जिसमें एक नाम जवाहरलाल जी का भी था।

मेरी उसी अहमदाबाद यात्रा की एक और छोटी सी घटना मुझे याद आ रही है।

शायद तीसरे पहर का वक्त था। मैं गांधी जी के पास

बैठा हुआ था। उनके सत्याग्रह आश्रम की नियमावली छप चुकी थी। छोटे साइज की पाँच-सात सफे की छोटी सी चीज थी। एक कापी कहीं वहीं आस-पास पड़ी हुई थी। मेरी निगाह उस पर गई। मैं उसे पढ़ गया। उसमें एक नियम यह छपा हुआ था – 'वर्णाश्रम धर्म को बाधा न पहुंचे। इसलिये आश्रमवासी जब कभी आश्रम से बाहर जायेंगे तो केवल फल या दूध खाकर ही रहेंगे।'

यह वाक्य मैं याद से ही लिख रहा हूं पर शायद ही एक दो शब्द का फर्क हो। उससे असल मतलब में फर्क बिल्कुल नहीं पड़ता ।

मैं इसे पढ़कर कुछ हैरान हुआ। गांधी जी को पढ़कर सुनाया और पूछा-यह क्या? उन्होंने तुरन्त जवाब दिया – 'यह तुम्हारे लिये नहीं है। इसे रख दो। तुम आश्रमवासी बनो तो इसे न मानना। मैं कहाँ मानता हूं? तुम इसे रहने दो। तुम अपने काम की बात करो।'

उनके यह फिकरे भी मैं याद से लिख रहा हूं। मैं समझ गया कि गांधी जी और उनका आश्रम दोनों अभी विकास की हालत में हैं। अभी खिल रहे हैं और रूप ले रहे हैं।

रौलट एक्ट के खिलाफ सत्याग्रह शुरू हो जाने के बाद से गांधी जी सारे देश के सामने देश के सब से बड़े और अनन्य नेता के रूप में आ गये। मैंने और मेरे जैसे विचारों के बहुत से पुराने काम करने वालों ने अब देख लिया कि अपने नये तरीके से गांधी जी ने जो जान, जो बेदारी, जो जोश और जो त्याग की भावना देश भर में पैदा कर दी थी वह हम अपने पुराने तरीकों से न कर पाये थे और न कर सकते थे। मेरा उनसे बार-बार जगह-जगह मिलना, साथ रहना और साथ सफर करना तेजी के साथ बढ़ता चला गया।

साबरमती आश्रम में, बम्बई में और जगह-जगह उनसे मिलना हुआ। यहाँ एक बात गांधी जी से सुनी हुई लिख रहा हूं:

साबरमती आश्रम कायम हो चुका था। पहले सत्याग्रह में उसकी बुनियाद पड़ी। इसलिये वह सत्याग्रह आश्रम ही कहलाता था। कई हजार रूपये महीने का खर्च था। गांधी जी के कुछ धनवान मित्र और प्रेमी, जो अधिकतर गुजराती थे, आश्रम का खर्च चलाते थे। खाना बनाने वाले हिन्दू थे। इन धनवान मित्रों में से भी कोई-कोई और उनके घरवाले जब तब आश्रम में आकर भोजन कर लेते थे। उन्हें ऐसा करने में बड़ी खुशी होती थी। थोड़े ही दिनों में एक मेहतर परिवार आश्रम में आकर ठहर गया और गांधी जी के हुकुम से और सबकी तरह रसोई में आने-जाने और सब के साथ खाने-पीने लगा। बहुत से गैर हिन्दू मेहमान भी आश्रम में आने, रहने और बिना भेदभाव सब के साथ खाने-पीने लगे। आश्रम का खर्च चलाने वाले कुछ धनवान भाइयों के लिये यह नई बात थी। वह इसके आदी न थे। उन्हें और उनके घर वालों को आश्रम में खाने में संकोच होने लगा। उन्होंने गांधी जी के पास आकर बड़ी नम्रता से यह सुझाया कि कम से कम उनकी खातिर आश्रम की रसोई को जरा छोटी जात वालों और गैर हिन्दुओं से अलग रखा जाये। गांधी जी ने सुन लिया। उस समय कोई जवाब न दिया। वह अपने मित्रों के साथ किसी तरह की जबरदस्ती करना ठीक न समझते थे। अगले दिन सुबह को उन्होंने कुछ आश्रमवासियों से कहा- 'अहमदाबाद के भंगी बाड़े में जाओ, वहाँ कोई मकान या जगह देखो। अपना आश्रम हम वहीं उठाकर ले जायेंगे और वहाँ के रहने वाले जो खाना हमें अपने हाथों से लाकर देंगे वही हम खा लेंगे या मजदूरी करके पेट भर लेंगे। जो मिलने आयेगा वहीं आकर हमसे मिल लेगा।' जगह ढूँढ़ी जाने लगी। उन धनवान मित्रों के कानों तक यह खबर पहुंची। हो सकता है उन्होंने आपस में कुछ सलाह की हो। आकर गांधी जी से मिले। उन्होंने अपने दो दिन पहले के सुझाव की माफी माँगी। आश्रम, आश्रमवासियों, आश्रम प्रेमियों और आश्रम में आने-जाने वालों के लिये छूत-छात हमेशा के लिये मिट गई। यह था गांधी जी और उनके आश्रम का दर्जे बदर्जे लेकिन काफी तेजी के साथ विकास ।

गांधी की वैज्ञानिकता

पराग मांदले

भारत में जो लोग गांधी को गहराई से नहीं समझ पाते हैं, वे अक्सर उनका उल्लेख और विश्लेषण आमतौर पर एक अव्यावहारिक, अतिशय आदर्शवादी और स्वप्नदर्शी महात्मा के रूप में करते हैं। एक ऐसा व्यक्ति जिसने संन्यासी या वैरागी लोगों के लिए सदियों से लागू किये जाने वाले भारतीय अध्यात्म के सिद्धान्तों को पूरे समाज पर लागू करने की कोशिश की। एक ऐसा व्यक्ति जो वैज्ञानिक प्रगति और आधुनिक विकास की अवधारणाओं का विरोधी था। मगर दूसरी ओर इससे बिल्कुल उलट आधुनिक जगत् की अनेक समस्याओं के समाधान के लिए दुनिया भर में लोग आशा भरी निगाहों से गांधी की ओर देख रहे हैं और यह सोचकर आश्चर्य कर रहे हैं कि आज से एक सदी से अधिक पहले गांधी ने इनमें से कई समस्याओं का न केवल अनुमान लगा लिया था, बल्कि उनके समाधान के तरीके भी सुझाये थे।

वास्तव में गांधी के आधुनिकता और विज्ञान का विरोधी होने का आरोप हमें तभी सही प्रतीत होता है, जब हम गांधी को उन चश्मों के पीछे से देखने की कोशिश करते हैं जो अक्सर हमें उपलब्ध कराये जाते हैं। लेकिन जिस दिन हमारी आँखों पर से ये चश्मे उतर जाते हैं, उस दिन जिस गांधी के हमें दर्शन होते हैं, वह गांधी इन धारणाओं से पूरी तरह से विपरीत दिखाई देता है।

दरअसल, गांधी को आधुनिक सभ्यता और वैज्ञानिक प्रगति का विरोधी माने जाने की मुख्य वजह वर्ष 1909 में अर्थात् दक्षिण अफ्रीका से हमेशा के लिए 1915 में भारत लौट आने के भी छह वर्ष पहले प्रकाशित उनकी एक छोटी सी पुस्तक हिन्द स्वराज्य में व्यक्त विचार हैं। ऐसे विचार कि 30 वर्ष बाद भी जिनका एक शब्द भी वह बदलना नहीं चाहते थे। इस पुस्तक के वर्ष 1914 में प्रकाशित दूसरे गुजराती संस्करण की भूमिका में गांधी लिखते हैं: 'मैं तो यूरोप की आधुनिक सभ्यता का शत्रु हूँ और हिन्द स्वराज्य में मैंने अपने इसी विचार को निरूपित किया है। और यह बताया है कि भारत की दुर्दशा के लिए अँग्रेज नहीं बल्कि हमलोग ही दोषी हैं, जिन्होंने आधुनिक सभ्यता स्वीकार कर ली है।' आगे वह लिखते हैं कि

भारत में जो लोग गांधी को गहराई से नहीं समझ पाते हैं, वे अक्सर उनका उल्लेख और विश्लेषण आमतौर पर एक अव्यावहारिक, अतिशय आदर्शवादी और स्वप्नदर्शी महात्मा के रूप में करते हैं। एक ऐसा व्यक्ति जिसने संन्यासी या वैरागी लोगों के लिए सदियों से लागू किये जाने वाले भारतीय अध्यात्म के सिद्धान्तों को पूरे समाज पर लागू करने की कोशिश की। एक ऐसा व्यक्ति जो वैज्ञानिक प्रगति और आधुनिक विकास की अवधारणाओं का...।

'हिन्द स्वराज्य को समझने की कुंजी इस बात में है कि हमें दुनियावी प्रवृत्ति से निवृत्त होकर धार्मिक जीवन ग्रहण करना चाहिए।' यहाँ हमें यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि जब गांधी धार्मिक जीवन की बात करते हैं तो वे किसी खास धर्म, पन्थ या सम्प्रदाय के कर्मकाण्डों की बात नहीं करते बल्कि तमाम धर्मों, पन्थों और सम्प्रदायों के उन मूलभूत तत्त्वों और मूल्यों की बात करते हैं, जो समान हैं और सबके लिए हितकारी हैं।

जाहिर है, तब भी और अब भी इस तरह की बातें कहने वाले को प्रतिगामी विचारों वाला या विज्ञान विरोधी कहना बहुत आसान है। लेकिन इससे यही साबित होता है कि विज्ञान को लेकर हमारी समझ बहुत छिछली है और हम आधुनिक यन्त्रों-उपकरणों और उनकी प्रौद्योगिकी को ही विज्ञान का पर्यायवाची समझते हैं।

गूगल पर जब आप विज्ञान की परिभाषा को खोजते हैं तो उसमें कई तरह की अलग-अलग परिभाषाएँ सामने आती हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं –

1. विज्ञान अध्ययन का वह क्षेत्र है जो हमारे आसपास की दुनिया को देखने और प्रयोग करने के माध्यम से खोजने और उसका वर्णन करने से सम्बन्धित है। (www.vocabulary.com)

2. अध्ययन या ज्ञान की एक शाखा जिसमें सामान्य नियमों या सत्यों का अवलोकन, जाँच और खोज शामिल होती है जिन्हें व्यवस्थित रूप से परखा जा सकता है। (www.vocabulary.com)

3. किसी भी वस्तु के बारे में जानकारी ग्रहण करना और जानकारी को सही तरीकों से लागू करना एवं किसी भी वस्तु का सही अवलोकन करना एवं उसका विश्लेषण करना ही विज्ञान है। वि का अर्थ है विकास करना और विज्ञान का अर्थ हुआ विकास करने वाला ज्ञान। (विकिपीडिया)

4. विज्ञान, साक्ष्य पर आधारित व्यवस्थित पद्धति का अनुसरण करते हुए प्राकृतिक और सामाजिक विश्व के ज्ञान और समझ की खोज और अनुप्रयोग है। (sciencecouncil.org)

गांधी विचारों और सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता को जाँचने और समझने के लिए विज्ञान की सही परिभाषा या अर्थ समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है। विज्ञान को समझे बिना हम यह नहीं जान सकते कि दरअसल विज्ञान की कसौटी पर न केवल गांधी विचारों को पूर्णतः वैज्ञानिक सिद्ध किया जा सकता है बल्कि यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि आधुनिक समय की अधिकांश प्रगति दरअसल विज्ञान विरोधी है।

इसे समझने के लिए सबसे पहले मूल बात की ओर ध्यान देना चाहिए। विज्ञान के तमाम सिद्धान्त और विज्ञान की तमाम खोजों का मूल आधार प्रकृति और प्रकृति में घटने वाली घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण और विश्लेषण है। वह चाहे न्यूटन का ग्रेविटी का सिद्धान्त हो या आइंस्टाइन का सापेक्षता का सिद्धान्त या फिर हमारे अपने जगदीश बसु का पौधों की संवेदनशीलता का सिद्धान्त। इन सबका मूल स्रोत दरअसल प्रकृति ही है। प्रकृति में घटने वाली तमाम घटनाएँ दरअसल विज्ञान के किसी न किसी सिद्धान्त के आधार पर ही घटती हैं। उन्हीं का निरीक्षण करके विज्ञान के तमाम सिद्धान्तों की खोज की गयी है।

अब आप एक बार इस बात पर विचार कीजिए कि प्रकृति का निरीक्षण हमें जीवन के अस्तित्व के किस सबसे बड़े सिद्धान्त के बारे में बताता है? वह सिद्धान्त है- हमारी प्रकृति में मौजूद जीवन के सारे प्रकार एक कड़ी से जुड़े हुए हैं और किसी न किसी प्रकार से एक-दूसरे पर निर्भर हैं। प्रकृति में उसके हर एक घटक का पृथ्वी के इस सृष्टिचक्र को निरन्तर गतिमान रखने में अपना महत्त्व है, बिना किसी छोटे-बड़े के भेद या वर्गीकरण के। इसमें से किसी एक घटक का नष्ट या असन्तुलित होना, इस पूरे सृष्टिचक्र को प्रभावित और असन्तुलित करता है।

परस्पर निर्भरता का यही सूत्र किसी भी मानव समाज के मामले में भी उतना ही सत्य है। कोई भी मानव समाज उसके सभी घटकों की परस्पर निर्भरता और सन्तुलन से ही सम्भव और सशक्त होता है। किसी देश, राज्य, शहर या गाँव के विभिन्न जाति, समुदाय और वर्गों के मामले में भी पारस्परिक निर्भरता का यह नियम लागू होता है। इसमें किसी भी प्रकार का असन्तुलन समाज के

सन्तुलन को प्रभावित करता है, उसे कमजोर बनाता है। अब यदि आप इस शाश्वत सिद्धान्त के आलोक में गांधी विचार या सिद्धान्तों पर दृष्टि डालें तो पाएँगे कि गांधी विचार के केन्द्र में भी ठीक यही सिद्धान्त सक्रिय है। गांधी के सारे विचार, सारे सिद्धान्त, सारी अवधारणाएँ और सारी शिक्षाएँ इस परस्पर निर्भरता के सिद्धान्त पर ही टिके हुए हैं।

सर्वसमावेशकता गांधी विचार का सबसे मूलभूत और सबसे महत्त्वपूर्ण गुण है। गांधी नकार के नहीं, स्वीकार के उद्घोषक हैं। जब आप अपने जीवन और अपने अस्तित्व में प्रकृति के शेष अन्य सभी व्यक्तियों, जीवों और तत्त्वों की आवश्यकता को मान्य करते हैं तो सहज है कि आप न तो उनके प्रति किसी प्रकार का द्वेष रख सकते हैं और न कभी उनमें से किसी के भी विनाश की कल्पना या प्रयास कर सकते हैं। परस्पर निर्भरता और सर्वसमावेशकता का यह मूलभूत सिद्धान्त गांधी जीवन के हर क्षेत्र में लागू करते हैं। यही वजह है कि अँग्रेजों का विरोध करते हुए भी कभी वह उनके नष्ट होने की कामना नहीं करते। वह बार-बार जनता को यह समझाते हैं कि राजा का अस्तित्व प्रजा के अस्तित्व पर निर्भर है। इसी तरह वह मिल मजदूरों की हड़ताल के समय बार-बार इस बात पर जोर देते हैं कि मजदूरों के बिना कोई भी व्यक्ति मिल मालिक नहीं बन सकता, इसलिए उसे मजदूरों के हितों का पूरा ध्यान रखना चाहिए। यदि सारे व्यक्ति मजदूर बनने से इनकार कर दें तो किसी भी मिल या उद्योग के मालिक का अस्तित्व टिके रहना असम्भव है। उसी तरह मजदूर वर्ग को भी अपना काम सेवा की भावना से करना चाहिए। मिल मालिक और मजदूर दोनों का सम्बन्ध दोनों वर्गों के लिए उपयोगी साबित होना चाहिए। वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थन भी वह इसी बिना पर करते हैं कि इसमें विविध प्रकार की वृत्तियों से उत्पन्न वर्णों का महत्त्व और सम्मान एकसमान होना चाहिए और यह व्यवस्था समाज के सुचारु संचालन के लिए बनायी गयी थी, किसी प्रकार के ऊँच-नीच के भेद के निर्माण के लिए नहीं। समाज में ऊँच-नीच का भाव समाज के अस्तित्व के लिए घातक है।

गांधी का अपनी जरूरतों को सीमित रखने का विचार भी प्रकृति के इसी सिद्धान्त पर आधारित है कि सृष्टि में जीवन के सन्तुलन के लिए आदान-प्रदान की प्रक्रिया सतत गतिशील रहती है। मनुष्य को छोड़कर सृष्टि के बाकी सभी घटक इस व्यवस्था में अपना निश्चित योगदान देते रहते हैं। लोभ और लालच प्रकृति के शाश्वत सिद्धान्तों के विपरीत है। यह सृष्टि के निर्बाध संचालन में गतिरोध पैदा करते हैं। हमें प्रकृति से सिर्फ उतनी ही चीजों को लेना चाहिए, जो हमारे अस्तित्व के लिए अनिवार्य है और जिसे किसी न किसी रूप में हम प्रकृति को वापस लौटा सकें। यदि हम इस मूलभूत सिद्धान्त का पालन करें तो सृष्टि का यह चक्र अबाधित रूप से निरन्तर चलता रहेगा। लेकिन हम देखते हैं कि इंसान ने अपने लोभ के लिए विज्ञान पर आधारित प्रौद्योगिकी का सहारा लिया और उसके दुरुपयोग के द्वारा वह प्रकृति को निरन्तर नोचने-खसोटने के उपाय खोजता रहता है। गांधी इंसान की इसी दुष्प्रवृत्ति का विरोध करते हैं, जो आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता में पायी जाती है और जिसका वह स्वयं को शत्रु मानते हैं। गांधी विज्ञान की सहायता से निर्मित उन यन्त्रों, मशीनों और उपकरणों का विरोध करते हैं, जिनका उद्देश्य मनुष्य के जीवन को आसान बनाना न होकर केवल मुनाफा कमाना है। वह इसके लिए प्राकृतिक संसाधनों के असीमित दोहन का विरोध करते हैं। मगर उनके इस विरोध को दुर्भावनापूर्वक विज्ञान का विरोध समझ लिया जाता है। गांधी ने भारत की संस्कृति से ही इस जीवनमूल्य को पाया था।

भारतीय और पाश्चात्य विचारधारा में मूलभूत अन्तर शायद यही है कि भारतीय विचारधारा अपने अस्तित्व के लिए दूसरों के अस्तित्व को न केवल मान्यता देती है, बल्कि उसका सम्मान भी करती है, जबकि औद्योगिकीकरण के बाद की आधुनिक पाश्चात्य विचारधारा में अपने फायदे के लिए दूसरों का केवल उपयोग करने की स्वार्थी मानसिकता को बढ़ावा दिया जाता है। इसे एक छोटे से उदाहरण से समझा जा सकता है। भारतीय संस्कृति जीवो जीवस्य जीवनम् के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए भी इस बात से अनजान नहीं है कि प्रकृति ने इस सिद्धान्त के सुचारु संचालन के लिए विभिन्न प्रकार के जीवों की संख्या में सन्तुलन की तकनीक को अपनाया है। प्रकृति सहज रूप से अपने सन्तुलन के लिए

भक्ष्य जीवों की संख्या भक्षक जीवों की तुलना में ज्यादा रखती है। लेकिन पश्चिम की लोभमय वृत्ति प्रकृति में होने वाले परिवर्तनों में भी अपने अस्तित्व को बचाये रखने वाले सबल की उत्तरजीविता के सिद्धान्त (जो प्रकृति में होने वाले परिवर्तन के अनुरूप अपने में बदलाव करने के लिए तत्पर होगा वही विभिन्न प्राकृतिक विभीषिकाओं के बावजूद अपना अस्तित्व बचा सकेगा) का मनमाना अर्थ इस तरह से करती है कि समाज में जो बलशाली और सामर्थ्यवान होगा, वही बचता है, कमजोर और असहाय का खत्म होना अपरिहार्य है। उक्त सिद्धान्त की मूल अवधारणा से बिल्कुल अलग इस सोच का विकृत रूप हमें हिटलर की आर्य-श्रेष्ठत्व की अवधारणा में दिखाई देता है।

गांधी हर उस व्यवस्था या तरीके के विरोधी हैं, जिसमें किसी का भी किसी भी रूप में शोषण शामिल है। गांधी के चिन्तन के मूल में सामान्य मनुष्य और उसकी मूलभूत आवश्यकताएँ हैं और इनकी कीमत पर कुछ लोगों की सम्पन्नता का वह तीखा विरोध करते हैं। वह यह तो मानते हैं कि कुछ लोगों की सहज वृत्ति धन कमाने की होती है मगर अपने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के माध्यम से वह इस वृत्ति पर भी एक नैतिक अंकुश लगाते हैं और यह सुझाव देते हैं कि समाज के बल पर धन कमाने वाले अपनी जरूरतों की पूर्ति के बाद शेष धन को समाज की धरोहर समझें और उसका उपयोग समाज की भलाई के लिए ही करें। गांधी इस धन कमाने की वृत्ति को लोभ से मुक्त रखने का आग्रह करते हैं। गांधी उन तमाम आधुनिक यन्त्रों का विरोध करते हैं जिनका आविष्कार मनुष्य मात्र की भलाई के लिए न होकर अधिकाधिक उत्पादन कर अधिकाधिक मुनाफा कमाने और इसके परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में लोगों को बेरोजगार बनाने के लिए होता है।

हरिजन सेवक के 20.09.1935 के अंक में वह लिखते हैं : 'हिन्दुस्तान के सात लाख गाँवों में फैले हुए श्रम करने वाले ग्रामवासियों के विरुद्ध इन जड़ यन्त्रों को प्रतिद्वन्द्विता में नहीं लाना चाहिए। यन्त्रों का सदुपयोग तो यह कहा जाएगा कि उससे मनुष्य के प्रयत्न को सहारा मिले और उसे वह आसान बना दे। यन्त्रों के मौजूदा उपयोग का झुकाव तो इस ओर ही बढ़ता जा रहा है कि कुछ इने-गिने लोगों के हाथ में खूब सम्पत्ति पहुँचायी जाए और जिन करोड़ों स्त्री-पुरुषों के मुँह से रोटी छीन ली जाती है, उन बेचारों की जरा भी परवाह न की जाए।'

गांधी के लिखे के करीब नब्बे साल बाद क्या हम कदम-कदम पर उनकी इस आशंका को अपनी सम्पूर्ण भयावहता के साथ मूर्त रूप में उतरा हुआ नहीं देख रहे हैं? एक ओर जहाँ देश में गरीब और गरीब होता जा रहा है, बेरोजगारी दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है और दूसरी ओर चन्द लोग दुनिया के सबसे ज्यादा अमीरों की सूची में लगातार ऊपर चढ़ते जा रहे हैं। आज हम अपने देश की अर्थव्यवस्था के आँकड़े बढ़ाने के लालच में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को हमारे देश के बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधनों का निरन्तर दोहन करके अपरिमित लाभ कमाकर बाहर ले जाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं।

गांधी बड़े पैमाने पर औद्योगिकीकरण की जगह आत्मनिर्भर गाँवों का सिद्धान्त सामने रखते हैं, जिसमें हर गाँव अपनी अधिकांश जरूरतों की पूर्ति खुद करके आत्मनिर्भर रहे और ऐसी चुनिन्दा वस्तुएँ, जिनका निर्माण गाँव में नहीं किया जा सकता है, उनके लिए राज्य के स्वामित्व में सीमित मात्रा में उद्योग लगाये जाएँ ताकि उनमें अधिकतम मुनाफे के लालच में उसमें काम करने वाले मनुष्यों का शोषण और प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन होने की सम्भावना शेष न रहे।

प्रकृति परस्पर-निर्भरता के सुनहले सिद्धान्त के जरिये जिस तरह सृष्टि की अपनी व्यवस्था को कायम रखती है, ठीक वही वैज्ञानिक व्यवस्था गांधी समाज और देश के लिए चाहते हैं। आधुनिक यन्त्रों के प्रति उनका विरोध नहीं है, मगर उनकी उपयोगिता को लेकर गांधी की सोच एकदम स्पष्ट है: 'यन्त्रों का भी स्थान है। लेकिन मनुष्यों के लिए जिस प्रकार की मेहनत करना अनिवार्य होना चाहिए, उसी प्रकार की मेहनत का स्थान यन्त्रों को ग्रहण न कर लेना चाहिए। घर में चलाने लायक यन्त्रों में सुधार किये जाएँ, तो मैं उसका स्वागत करूँगा।'

दरअसल, इस सारी बहस के केन्द्र में एक सीधा सा सवाल होना चाहिए कि हम जिस वैज्ञानिकता का समर्थन और पोषण करें, उसके केन्द्र में क्या होना चाहिए? मनुष्यता और पर्यावरण या फिर येन-केन-प्रकारेण मुनाफा, मुनाफा और सिर्फ मुनाफा?

आप अठारहवीं शताब्दी में यूरोप से शुरू हुई औद्योगिक प्रगति के पिछले दो-तीन सौ सालों के सफर पर दृष्टि डालिए। तमाम तरह की वैज्ञानिक खोजों के केन्द्र में अधिकांशतः मानव-कल्याण न होकर उनका व्यावसायिक उपयोग कर अधिकाधिक धन कमाना ही है। वास्तव में नये-नये आविष्कारों की खोज के लिए बड़े पैमाने पर संसाधनों की जरूरत, उन संसाधनों को बड़ी कम्पनियों द्वारा उपलब्ध कराना, आविष्कारों की खोज के बाद उनका पेटेण्ट, पेटेण्ट के जरिये उनके निर्माण और बिक्री पर एकाधिकार, इस एकाधिकार के द्वारा अधिकाधिक मुनाफा, इस मुनाफे के लिए प्राकृतिक संसाधनों के अनियन्त्रित दोहन और पर्यावरण का नाश, लागत में कमी के लिए कर्मचारियों-मजदूरों का शोषण, अधिक बिक्री के लिए झूठे विज्ञापनों के जरिये कृत्रिम जरूरतों का निर्माण और फिर अन्ततः सारे मुनाफे का कुछ कम्पनियों या लोगों के बीच में सीमित हो जाना- सारी दुनिया इसी दुश्चक्र में फँसी हुई है।

इस बात को हम आधुनिक विज्ञान का एक वरदान मानी जाने वाली पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति अर्थात् एलोपैथी के उदाहरण से समझ सकते हैं। एलोपैथी में रोगों के निदान और उपचार के लिए बड़ी मात्रा में तकनीकी का उपयोग किया जाता है। दरअसल, जिन बातों के लिए एलोपैथी का गुणगान किया जाता है, उसका बड़ी हद तक श्रेय अभियान्त्रिकी को है, जिसने इस विधा में रोगों का निदान और उपचार आसान बना दिया है। इसे एक बार नजरअन्दाज भी कर दें तो हम आज जब अपने चारों ओर निगाह दौड़ाते हैं तो पाते हैं कि चिकित्सा हमारे देश के ही नहीं, दुनिया के सबसे बड़े उद्योगों में से एक बन गयी है। आज अनेक जानलेवा बीमारियों की चिकित्सा तो उपलब्ध है मगर यह भी उतनी ही बड़ी सच्चाई है कि उन बीमारियों की चिकित्सा इतनी महँगी है कि कोई आम व्यक्ति यदि उसकी चपेट में आ जाए तो इलाज में उसका घर-बार बिकने की नौबत आ जाती है। आज इस देश की अधिकांश जनसंख्या की मासिक आय 20 हजार रुपये महीने से कम है, जबकि किसी भी सामान्य से अस्पताल में भरती होने पर सामान्य उपचार पर ही कम से कम 20 हजार रुपये प्रतिदिन का खर्च बहुत साधारण बात है, यदि बीमारी बड़ी हो तो फिर यह खर्च कई गुना ज्यादा हो जाता है। डॉक्टर, अस्पताल, विभिन्न रोगों की जाँच के लिए खुली हुई लेबोरेटरी, दवा की कम्पनियाँ-इन सबका एक विशाल नेक्सस आज के समय की कड़वी सच्चाई बन चुका है। झूठी जाँच, अनावश्यक दवाइयाँ, जरूरत न होने पर भी अनेक प्रकार की शल्य चिकित्साएँ- इनके जाल में फँसने के बाद किसी भी व्यक्ति का सही-सलामत बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है। इसके अलावा अपनी कम्पनी की दवाओं की बिक्री बढ़ाने के लिए जान-बूझकर विभिन्न प्रकार के वायरस के प्रसार के आरोप भी कई कम्पनियों पर लगते रहते हैं।

गांधी अस्पतालों की निरन्तर बढ़ती संख्या को किसी भी समाज के लिए एक धब्बा मानते थे। उनका मानना था कि हमारी जीवनशैली प्रकृति के इतने अनुकूल हो कि हमें अस्पतालों की कम से कम जरूरत पड़े। लेकिन दुर्भाग्य से कोई इस बात पर ध्यान नहीं देता कि किसी भी देश में बड़ी संख्या में खुले हुए अस्पताल दरअसल उसके बीमार होने का परिचायक हैं, प्रगति का नहीं।

दिल्ली में तिब्बिया कॉलेज के उद्घाटन के अवसर पर दिनांक 13.02.1921 को दिये अपने भाषण में गांधी ने कहा था : 'मैं अस्पतालों की वृद्धि में सभ्यता की उन्नति नहीं देखता। इसको मैं अवनति का स्वरूप ही समझता हूँ। जैसे कि पिंजरापोलों की संख्या बढ़ने से यही मालूम पड़ता है कि लोगों में मवेशी की भलाई की ओर उदासीनता ही है। इस कारण मुझे आशा है कि यह विद्यालय लोगों को रोगों से बचाने का विशेष प्रयत्न करेगा और रोगी को नीरोग करने की कम फिकर करेगा।'

यह सच है कि कुछ गम्भीर बीमारियों के निदान और इलाज के लिए भी आधुनिक उपचार पद्धति निश्चय ही वरदान स्वरूप सिद्ध हो सकती है, मगर सामान्य बीमारियों के आसान और सस्ते इलाज के लिए तो किसी जमाने में हमारे घरों में दादी-नानी के माध्यम से उपलब्ध घरेलू उपचार की परम्परा अधिक श्रेयस्कर है जिसे आधुनिकता के नाम पर खत्म कर दिया गया है। जाहिर है, यह परम्परा भी वर्षों के निरीक्षण, परीक्षण और उससे उपजे अनुभव की ही देन थी। गांधी बीमारियों के सस्ते और सरल उपचार की पद्धतियों की खोज के लिए विज्ञान के इस्तेमाल के

हिमायती थे। उन्होंने स्वयं खानपान और प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी अनेक प्रयोग किये और उनसे अपना और अपने अनेक सहयोगियों का सफल उपचार भी किया।

एक छोटे से उदाहरण से हम गांधी की वैज्ञानिक दृष्टि को समझ सकते हैं। वर्ष 1934 में गांधी ने ग्रामीण उद्योगों को संरक्षित करने और बढ़ावा देने के लिए गठित अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना के समय कहा था '... यह क्षेत्र इतना बड़ा है, और इतने विविध उद्योगों की रचना और व्यवस्था करने की जरूरत है कि उसमें हमारी सभी प्रकार की व्यावहारिक समझ, कौशलयुक्त कारीगरी और वैज्ञानिक प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ेगी। कठोर परिश्रम, निरन्तर प्रयास और वैज्ञानिक तथा व्यावसायिक कौशल का उपयोग किये बिना यह कार्य सम्भव नहीं हो सकेगा।'

गांधी ने उस समय अपने कुछ परिचित डॉक्टरों और कैमिस्टों को एक प्रश्नावली भेजकर मिल में तैयार होने वाले पालिश किये हुए चावल और घर में कूटे हुए बिना पालिश के धान का रासायनिक पृथक्करण करने और उनके पोषक मूल्य बताने के लिए कहा था। आज भी कोई इन दोनों के पोषक मूल्यों का विश्लेषण करे तो उसे तुरन्त यह पता चल जाएगा कि औद्योगीकरण और आधुनिकता के नाम पर हमारे खाने को किस तरह पोषणविहीन और हानिकारक बना दिया गया है।

वास्तव में बारीकी से देखा जाए तो सहज ही इस बात को स्वीकार किया जा सकता है कि गांधी की सिर्फ सोच ही नहीं, पूरा जीवन ही वैज्ञानिकता की कसौटी पर खरा उतरता है। प्रकृति की समयबद्धता, निरन्तर क्रियाशीलता और परिणामों के प्रति अनासक्तिपूर्ण तटस्थता को गांधी ने अपने जीवन में अक्षरशः उतार लिया था। प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग के प्रति उनका आग्रह उनके पर्यावरणीय भान और वास्तविक विज्ञान की उनकी गहरी समझ का पता देता है।

इसे और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम इण्टरनेट पर vigyanjyoti.com नामक वेबसाइट पर दी गयी वैज्ञानिकता की चार मूल कसौटियों- अनुभववाद (Empiricism), वस्तुनिष्ठता (Objectivity), पुनरुत्पादन क्षमता (Reproducibility) और मिथ्याकरणीयता (Falsifiability) पर गांधी के विचारों को और उनके जीवन को कसकर देख सकते हैं।

इन चार कसौटियों में पहली कसौटी या सिद्धान्त है–सत्य को अनुभव के माध्यम से ही प्रमाणित किया जा सकता है। गांधी की सत्य की खोज की यात्रा ठीक इसी सिद्धान्त के अनुरूप ही जीवन भर चलती रही। उन्होंने तो अपनी आत्मकथा का नाम ही सत्य के साथ मेरे प्रयोग रखा था। गांधी ने अपने विचारों को बार–बार अनुभव की कसौटी पर कसा और जब उन अनुभवों के माध्यम से किसी सत्य को प्रमाणित पाया तभी उसे बाकी संसार के सामने रखा।

इसी तरह गांधी ने सत्य की खोज की अपनी यात्रा में वस्तुनिष्ठता या निष्पक्षता को हमेशा सर्वोच्च माना। एक कट्टर सनातनी हिन्दू परिवार में जन्म और उसके संस्कारों के बावजूद उन्होंने सत्य को किसी एक विचार या पद्धति तक सीमित न मानकर सभी धर्मों, पन्थों और विचार–प्रणालियों का अध्ययन किया और जहाँ–जहाँ उन्हें अपने सत्य की पुष्टि मिली, उसे स्वीकार किया। इसी तरह जहाँ उन्हें अपने धर्म में भी किसी सत्य की पुष्टि नहीं मिली या विरोधाभास दिखा, वहाँ उन्होंने उसे प्रकट करने में कोई संकोच नहीं किया, बल्कि उसमें सुधार का आग्रह भी किया। अस्पृश्यता का विषय उनकी इसी दृष्टि का परिचायक है, जिसे उन्होंने किसी भी धार्मिक आधार पर जायज ठहराने से स्पष्ट इनकार किया। अन्धानुकरण उनका स्वभाव नहीं था और धार्मिक व्यक्ति होने के बावजूद शास्त्रों में कही गयी बातों को वह विवेक की कसौटी पर कसे बिना स्वीकार नहीं करते थे। उन्होंने कहा भी था कि मैं शास्त्रजाल में पड़कर भरमाने वाला व्यक्ति नहीं हूँ।

तीसरा सिद्धान्त कहता है कि वैज्ञानिक प्रयोगों को दुहराया जा सकता है और उनके परिणामों को सत्यापित किया जा सकता है। जाहिर है, इसके लिए कुछ आवश्यक शर्तें भी लागू होती हैं। गांधी ने अपने जीवन में जो सत्य और अहिंसा के प्रयोग किये, उनको बार–बार दोहराया और उन्हें हर बार खरा पाया। और बात सिर्फ गांधी की ही तो नहीं है। गांधी के विचारों को अपनाकर दुनिया भर में लोगों ने बड़े–बड़े राजनीतिक और सामाजिक संघर्षों में असम्भव लगने वाली विजय पायी है। वहीं लगभग हर क्षेत्र में गांधी

विचारों को सफलतापूर्वक लागू करके निसर्गस्नेही और समाजोपयोगी जीवन की नींव रखने वालों की भी देश और दुनिया में कोई कमी नहीं है। यह बताता है कि गांधी विचार और सिद्धान्त समय की कसौटी पर बार-बार खरे सिद्ध होते हैं।

विज्ञान की चौथी कसौटी या सिद्धान्त कहता है कि कुछ भी अन्तिम सत्य नहीं माना जा सकता। नये साक्ष्यों के आधार पर पुराने सिद्धान्तों का खण्डन किया जा सकता है। गांधी के मामले में यह बात पूरी तरह से लागू होती है। गांधी को दरअसल महात्मा बनाने वाली सबसे बड़ी विशेषता ही यही थी कि वह जड़ नहीं थे, निरन्तर परिवर्तनशील थे। मगर यह परिवर्तनशीलता दिशाहीन नहीं थी। गांधी अपने प्रयोगों के परिणामस्वरूप हासिल अनुभवों को सत्य मानते थे मगर नये तथ्यों के आलोक में अपनी पुरानी धारणाओं में परिवर्तन से संकोच नहीं करते थे।

हरिजनबन्धु में दिनांक 30.04.1933 को गांधी लिखते हैं: 'मेरे लेखों का मेहनत से अध्ययन करने वालों और उनमें दिलचस्पी लेने वालों से मैं यह कहना चाहता हूँ कि मुझे हमेशा एक ही रूप में दिखाई देने की कोई परवाह नहीं है। सत्य की अपनी खोज में मैंने बहुत से विचारों को छोड़ा है और अनेक नयी बातें मैं सीखा भी हूँ। उमर में भले मैं बूढ़ा हो गया हूँ, लेकिन मुझे ऐसा नहीं लगता कि मेरा आन्तरिक विकास होना बन्द हो गया है या देह छूटने के बाद मेरा विकास बन्द हो जाएगा ।... इसलिए जब किसी पाठक को मेरे दो लेखों में विरोध जैसा लगे, तब अगर उसे मेरी समझदारी में विश्वास हो, तो वह एक ही विषय पर लिखे दो लेखों में से मेरे बाद के लेख को प्रमाणभूत माने।'

एक ओर गांधी जहाँ खुद को सतत विकासशील मानते हैं, वहीं वह किसी तरह की सम्पूर्णता या अन्तिम सत्य का भी कोई दावा नहीं करते हैं। अपनी आत्मकथा की प्रस्तावना में गांधी कहते हैं : 'अपने प्रयोगों के बारे में मैं किसी भी प्रकार की सम्पूर्णता का दावा नहीं करता। जिस तरह वैज्ञानिक अपने प्रयोग अतिशय नियमपूर्वक, विचारपूर्वक और बारीकी से करता है, फिर भी उनसे उत्पन्न परिणामों को अन्तिम नहीं कहता, अथवा वे परिणाम सच्चे ही हैं इस बारे में भी वह साशंक नहीं तो तटस्थ अवश्य रहता है। अपने प्रयोगों के विषय में मेरा भी वैसा ही दावा है।'

अपनी इसी वैज्ञानिक दृष्टि को विस्तार देते हुए इसी प्रस्तावना में गांधी आगे कहते हैं कि 'मैं चाहता हूँ कि मेरे लेखों को कोई प्रमाणभूत न समझे। यही मेरी विनती है। मैं तो सिर्फ यह चाहता हूँ कि उनमें बताये गये प्रयोगों को दृष्टान्त रूप मानकर सब अपने-अपने प्रयोग यथाशक्ति और यथामति करें।'

विज्ञान का लेबल लगा देने से हर बात वैज्ञानिक सिद्धान्तों से सुसंगत नहीं हो जाती। पिछली करीब तीन शताब्दियों में हमने आधुनिक विकास के नाम पर प्रकृति से प्राप्त विज्ञान के सिद्धान्तों का अविवेकपूर्ण उपयोग करके इस पूरी सृष्टि के विनाश के उपकरण तैयार किये हैं। अपने आप को वैज्ञानिक रूप से उन्नत कहने और समझने वाले देशों ने सिर्फ मुनाफे की खातिर मानवता और प्रकृति का जितना बुरा किया है, उतना पिछले तीन हजार सालों में भी नहीं किया जा सका था।

गांधी ने बहुत पहले यह बात कही थी कि प्रकृति इस पृथ्वी पर रहने वाले सभी लोगों की आवश्यकताओं को तो पूरा कर सकती है मगर किसी एक व्यक्ति के भी लोभ या लालच को पूरा नहीं कर सकती। मगर दुर्भाग्य से आज अधिकांश लोग इस लोभ और लालच के चंगुल में कैद हैं। दूसरों पर नियन्त्रण और अन्तहीन मुनाफा कमाने की हवस में सारी दुनिया जिस डाल पर बैठी है, उसी को काटने में लगी हुई है। और विडम्बना यह है कि ऐसा करने वाले वैज्ञानिक दृष्टि वाले और आधुनिक कहलाते हैं जबकि प्राकृतिक विज्ञान के खरे सिद्धान्तों के अनुरूप अपना पूरा जीवन जीने वाले गांधी को आधुनिकता और विज्ञान का विरोधी माना जाता है। आज सारी पृथ्वी के सामने जिस तरह के पर्यावरणीय और नैतिक संकट खड़े हो गये हैं, उनसे बचाव का एकमात्र मार्ग वैज्ञानिक विचारधारा की कसौटी पर खरे उतरने वाले गांधी के विचारों को अपनाना है। इसी में इस सुन्दर पृथ्वी की रक्षा के सूत्र छिपे हैं और इससे ही गांधी के साथ पिछले करीब आठ दशकों से किये जा रहे अन्याय का प्रतिकार भी होगा।

'मैं पुराना अखबारनवीस हूँ': गांधी और पत्रकारिता

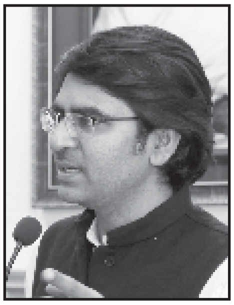

सौरव कुमार राय

महात्मा गांधी स्वयं को एक शौकिया पत्रकार माना करते थे। हालांकि, अपनी लेखनी एवं समाचार पत्र प्रबंधन के अनूठे तौर-तरीकों के जरिये उन्होंने पत्रकारिता के जो उच्च मानदंड स्थापित किए, वे आदर्श पत्रकारिता के नमूने हैं जो सर्वथा अनुकरणीय हैं। गांधीजी को समाचार पत्र पढ़ने और उनमें लिखने की आदत सर्वप्रथम तब लगी जब वे वकालत की पढ़ाई के लिए लंदन गये। इसके पीछे वे दलपतराम शुक्ल की प्रेरणा को महत्वपूर्ण मानते थे। इस संदर्भ में अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में वे लिखते हैं, 'हिन्दुस्तान में मैंने समाचार पत्र कभी पढ़े नहीं थे। पर (लंदन में) बराबर पढ़ते रहने के अभ्यास से उन्हें पढ़ने का शौक मैं पैदा कर सका था। 'डेली न्यूज', 'डेली टेलीग्राफ' और 'पेलमेल गजेट'- इन पत्रों को सरसरी निगाह से देख जाता था।' धीरे-धीरे लंदन के अन्नाहारी मंडल द्वारा प्रकाशित अखबार 'वेजिटेरियन' के लिए वे लेख भी लिखने लगे।

आगे चलकर अपने जीवनकाल में महात्मा गांधी ने कई पत्र-पत्रिकाओं का संचालन एवं सम्पादन भी किया। सर्वप्रथम 4 जून 1903 को दक्षिण अफ्रीका में अपनी तथा नटाल इंडियन कांग्रेस (दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों के हितों को समर्पित संगठन) की गतिविधियों के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' नामक एक साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन में महती भूमिका निभायी। यह गुजराती, हिन्दी, अंग्रेजी व तमिल में निकलता था। वैसे तो मनसुखलाल नाजर इस समाचार पत्र के आधिकारिक संपादक थे, किन्तु इसके संपादन का वास्तविक बोझ तो गांधीजी पर ही था। इस अखबार को सुचारु रूप से निकालने के लिए गांधीजी लगातार अपनी जेब से पैसे लगाते रहे।

गांधीजी 'इंडियन ओपिनियन' के संपादक नहीं थे, फिर भी दक्षिण अफ्रीका में रह रहे हिन्दुस्तानी और गोरे दोनों यह जानते थे कि उसके लेखों व उनमें प्रकट विचारों के लिए वे ही जिम्मेदार थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि इसके संपादक मनसुखलाल नाजर को दक्षिण अफ्रीका के संदर्भ में गांधीजी के विवेक-शक्ति पर अत्यधिक विश्वास था। अतएव जिन-जिन विषयों पर कुछ लिखना जरूरी होता, उनपर लिख कर भेजने का बोझ वे महात्मा गांधी पर डाल दिया करते थे।

सर्वप्रथम 4 जून 1903 को दक्षिण अफ्रीका में अपनी तथा नटाल इंडियन कांग्रेस (दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों के हितों को समर्पित संगठन) की गतिविधियों के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' नामक एक साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन में महती भूमिका निभायी। यह गुजराती, हिन्दी, अंग्रेजी व तमिल में निकलता था। वैसे तो मनसुखलाल नाजर इस समाचार पत्र के आधिकारिक संपादक थे, किन्तु इसके संपादन का वास्तविक बोझ...।

स्वदेश वापसी के बाद गांधीजी के संपादकत्व में 7 अगस्त 1916 को बंबई से 'सत्याग्रही' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरू हुआ। यह पत्र किसी भी समाचार पत्र संबंधी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत नहीं था। इसके पीछे गांधीजी की सोच यह थी कि एक 'सत्याग्रही' अपने विचारों को स्वतंत्र रूप से ऐसे ही गैर-पंजीकृत गैर-रजिस्ट्रीशुदा पत्रों के माध्यम से प्रकट कर सकता है। संभवत: इस पत्र के जरिये वे अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर ब्रिटिश शासन द्वारा लगाए जा रहे प्रतिबन्ध की राजनीति को खुली चुनौती देना चाह रहे थे।

इसी क्रम में 1919 में गांधीजी ने 'नवजीवन' (गुजराती) व 'यंग इंडिया' (अंग्रेजी) के संपादन की जिम्मेदारी संभाली। ये दोनों पत्र भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में गांधीवादी विचारों के वाहक बनकर उभरे। इन दोनों पत्रों के माध्यम से महात्मा गांधी लगातार राजनीतिक मुद्दों के साथ-साथ आध्यात्मिक, सामाजिक और रचनात्मक प्रसंगों पर अपने विचारों से जनता को अवगत कराते रहे। 1921 में गांधीजी ने हिन्दी 'नवजीवन' का भी संपादन शुरू किया।

गांधीजी की प्रेरणा से ही 1922 में दक्षिण भारत में हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार हेतु 'हिन्दी प्रचारक' नामक पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। इसी प्रकार गांधीजी के संरक्षण एवं प्रेरणा से 23 फरवरी 1932 को 'हरिजन सेवक' नामक साप्ताहिक पत्र वियोगी हरि के संपादकत्व में निकालना शुरू हुआ। ये दोनों ही पत्र क्रमश: महात्मा गांधी द्वारा स्थापित संगठन - दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा एवं हरिजन सेवक संघ - के मुखपत्र थे। कुछ यही बात हिन्दुस्तानी तालीमी संघ वर्धा की ओर से 1936 से प्रकाशित होने वाली 'नई तालीम' नामक मासिक पत्रिका के साथ थी। कुल मिलाकर महात्मा गांधी प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से कई पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन से जुड़े रहे।

लंदन के 'वेजिटेरियन' से हुआ आरंभ

महात्मा गांधी ने किसी भी अखबार के लिए पहला लेख लंदन के अन्नाहारी मंडल द्वारा प्रकाशित अखबार 'वेजिटेरियन' के लिए लिखा। यह गौरतलब है कि 1888 में वकालत की पढ़ाई के लिए लंदन जाने से पहले गांधीजी ने अपनी माँ से मांस, मदिरा एवं परस्त्री से दूर रहने का वचन दिया था। ऐसे में शाकाहारी भोजनालय की तलाश के दौरान ही वे अन्नाहारी मंडल के संपर्क में आये और जल्द ही इसकी कार्यकारिणी में भी चुन लिए गये। इस संस्था के माध्यम से गांधीजी ने शाकाहार को एक नयी दृष्टि से देखा और समझा। शाकाहारी जीवन के महत्व का खूब प्रचारप्रसार किया। यहाँ तक कि संस्था के प्रतीक चिह्न को भी गांधीजी ने खुद डिजाइन किया।

इस दौरान अन्नाहारी मंडल के मुखपत्र 'वेजिटेरियन' के लिए उन्होंने तीन साल में नौ लेख भी लिखे। वरिष्ठ पत्रकार राम बहादुर राय अपने एक लेख में यह बताते हैं कि जिन नौ विषयों पर गांधी ने 'वेजिटेरियन' के लिए लेख लिखे वे थे रहन-सहन, उत्सव-त्योहार और खान-पान। राय के अनुसार इन लेखों में गांधी की पत्रकारिता दिखती है और इस रूप में दिखती है कि उन्होंने भारत के किसी गुण को बढ़ा-चढ़ा के नहीं लिखा और किसी अवगुण को छिपाया नहीं। जैसे एक लेख में उन्होंने लिखा कि 'लंदन में यह भ्रम अगर किसी को है तो यह दूर हो जाना चाहिए कि हर भारतीय शाकाहारी है।'

लंदन से लौटने के बाद भी गांधीजी ने 'वेजिटेरियन' के लिए लिखना जारी रखा। आहार संबंधी गांधीजी के आरंभिक विचारों को जानने के लिए ये लेख बहुमूल्य स्रोत हैं।

'इंडियन ओपिनियन' के दिलचस्प अनुभव

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है दक्षिण अफ्रीका में अपनी तथा नटाल इंडियन कांग्रेस की गतिविधियों के प्रचार-प्रसार के लिए गांधीजी ने 1903 में 'इंडियन ओपिनियन' नामक साप्ताहिक पत्र के प्रकाशन का प्रस्ताव रखा। वैसे तो मनसुखलाल नाजर इसके संपादक थे, किन्तु इसका ज्यादातर बोझ गांधीजी ने ही वहन किया। यहाँ तक कि इसे जारी रखने के लिए वे इसमें अपने पैसे उड़ेलते चले गये। गांधीजी के अनुसार एक समय ऐसा भी आया जब उनकी पूरी बचत इस पत्र को निकालने में ही खर्च हो जाती थी। अपनी आत्मकथा में इसे याद करते हुए वो लिखते हैं कि, 'मुझे ऐसे समय की याद है, जब मुझे हर महीने 75 पौंड भेजने पड़ते थे।'

इस अखबार के द्वारा उन्हें मनुष्य के रंग-बिरंगे स्वभाव का काफी ज्ञान मिला। संपादक और ग्राहक के बीच निकट का और स्वच्छ संबंध स्थापित करने की गांधीजी की धारणा के चलते उनके पास हृदय खोलकर रख देनेवाले पत्रों का ढेर लग जाता था। उसमें तीखे, कड़वे, मीठे भांति-भांति के पत्र उनके नाम आते थे। उन्हें

पढ़ना, उन पर विचार करना, उनमें से विचारों का सार लेकर उत्तर देना यह सब उनके लिए शिक्षा का उत्तम साधन बन गया था। गांधीजी लिखते हैं कि इन पत्रों को पढ़ते हुए उन्हें ऐसा लगता था कि मानो इसके द्वारा वे समाज में चल रही चर्चाओं और विचारों को सुन रहे हों। गांधीजी के अनुसार 'इंडियन ओपिनियन' के माध्यम से उन्हें संपादक के दायित्व को भलीभांति समझने में मदद मिली और इसके जरिये समाज के लोगों पर उन्हें जो प्रभुत्व प्राप्त हुआ, उसके कारण भविष्य में होनेवाली लड़ाई न सिर्फ संभव हो सकी, बल्कि वह सुशोभित हुई और उसे शक्ति प्राप्त हुई।

'इंडियन ओपिनियन' को लेकर एक दिलचस्प वाकया फीनिक्स आश्रम की स्थापना से भी जुड़ा हुआ है। यह गौरतलब है कि जॉन रस्किन की किताब 'अनटु दिस लास्ट' से प्रभावित होकर गांधीजी ने 1904 में डरबन के निकट फीनिक्स आश्रम की शुरुआत की। यहाँ वे और उनके अनुयायी सादगीपूर्ण ग्रामीण जीवन जीते थे। यहाँ मशीन की बजाए सारे काम हाथ से किए जाते थे। 'इंडियन ओपिनियन' के बढ़ते खर्च से चिंतित हो, गांधीजी ने इस अखबार का प्रकाशन भी प्रेस से न करवाकर आश्रम में ही हाथ से चल सकनेवाले यंत्रों की मदद से करने का निश्चय किया। लेकिन तत्काल यह संभव नहीं था, इसलिए आश्रम में ऑइल इंजन से चलने वाले मुद्रण-यंत्र की व्यवस्था की गयी। फिर भी गांधीजी के आग्रह पर हाथ से चलने वाले एक चक्र का भी इंतजाम किया गया, जिससे कि ऑइल इंजन में गड़बड़ी होने पर भी अखबार का प्रकाशन हो सके।

संयोग से पहली रात ही गांधीजी की दूरदृष्टि की धाक जाम गयी जब छपाई के लिए फर्मा मशीन पर कस दिया गया, परन्तु इंजन लाख कोशिशों के बाद भी चलने का नाम ही नहीं ले रहा था। ऐसे में हाथ-चक्र से काम चलाने का निर्णय हुआ। रात भर न सिर्फ आश्रमवासी, बल्कि वहाँ काम करने आए बढ़ई आदि भी हाथ-चक्र चलाते रहे। संयोगवश सवेरा होते-होते ऑइल इंजन भी चालू हो गया और इस प्रकार अखबार की नियमितता बनी रही। उस रात के अनुभव का परिणाम यह हुआ कि आगे चलकर फीनिक्स आश्रम में एक समय ऐसा भी आया जब विचारपूर्वक ऑइल इंजन चलाना पूरी तरह बंद कर दिया गया और दृढ़तापूर्वक हाथ-चक्र से ही काम लिया गया। गांधीजी के अनुसार फीनिक्स के इतिहास में यह ऊँचे से

ऊँचा नैतिक काल था, जिसके मूल में 'इंडियन ओपिनियन' के प्रकाशन से जुड़े अनुभव थे।

धीमी गति से पढ़ने के प्रयोग

यहाँ गांधीजी द्वारा धीमी गति से पढ़ने के प्रयोग भी उल्लेखनीय हैं। गांधीजी की विचारदृष्टि में किसी भी काम का तेजी से होना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि काम के दौरान स्थापित होने वाला व्यक्ति का व्यक्ति से अथवा व्यक्ति का अपने काम से जुड़ाव। उनके अनुसार यदि व्यक्ति किसी भी चीज के क्रियान्वयन में अपने सहकर्मियों या किए जाने वाले काम से जुड़ाव महसूस नहीं करता है, तो उस क्रिया का कोई खास नैतिक महत्व नहीं रह जाता। इंजन चालित कामों में यह जुड़ाव कदाचित ही स्थापित हो पाता है। यह बात कपड़ों के उत्पादन के लिए जितना सही है, उतना ही समाचार पत्र के प्रकाशन के लिए भी, या फिर उतना ही समाचार पत्रों को पढ़ने के तरीके के लिए भी।

इस संदर्भ में इसाबेल हॉफ्मायर अपनी किताब 'गांधीज् प्रिंटिंग प्रेस: एक्सपेरिमेंट्स इन स्लो रीडिंग' (2013) में लिखती हैं कि गांधीजी के लिए किसी भी चीज को सब्र के साथ पढ़ना, मशीनों की तेज गति पर आधारित औद्योगिक संस्कृति का व्यक्तिगत विरोध था। उनके लिए मशीन की स्वचालित हड़बड़ी को रोकना जरूरी था। गांधीजी को इसका एकमात्र रास्ता यही दिखा कि जीवन को शरीर और मानस की सहज गति पर लाया जाए। धीरे-धीरे पढ़ना इस सद्‌गति का माध्यम बना।

इसीलिए गांधीजी 'इंडियन ओपिनियन' के अपने स्तंभों में पाठकों को पढ़ने की क्रिया पर सटीक और विस्तृत निर्देश तकरीबन हर हफ्ते देते रहते थे। इसी क्रम में 24 अगस्त 1907 को अपने एक स्तंभ में वे लिखते हैं कि, 'ट्रांसवाल के भारतीय लोग इस समय एक जबरदस्त संघर्ष कर रहे हैं। यह अखबार ('इंडियन ओपिनियन') संघर्ष में मदद देने में पूरी तरह रत है। इसीलिए हरएक भारतीय का कर्तव्य है कि वह संघर्ष से संबंधित हर पंक्ति पढ़े। पढ़ कर उसका उपयोग करना है। पढ़ने के बाद अखबार को फेंक न दिया जाये। उसे संभालकर रखने की जरूरत है। कुछ लेख और अनुवाद तो हम बार-बार पढ़ने की सिफारिश करते हैं।'

गांधीजी चाहते थे कि अखबार का पाठक उसमें प्रकाशित लेखों को सिर्फ पढ़े भर नहीं, बल्कि उनपर मंथन भी करे। वह जिससे भी मिले उन लेखों पर चर्चा करे, विचार करे। इससे हर पाठक एक प्रकार से उस अखबार का चलता, फिरता, बोलता संस्करण बन जायेगा। हॉफ्मायर के अनुसार गांधीजी एक जगह लिखते हैं, 'पाठक दो प्रकार के होते हैं। एक तो जागते हुए भी सोनेवाले, अर्थात समझने के इरादे से नहीं, किन्तु केवल द्वेषभाव से और छिद्र खोज निकालने के लिए पढ़नेवाले; और दूसरे वे जो सचमुच ही नहीं समझते, अर्थात जो सचमुच नींद में हैं।' गांधीजी का मानना था कि जो नींद में हो उसे जगाया जा सकता है; किन्तु जो जागता हुआ भी सो रहा हो उसे कैसे जगाया जाये? इसलिए वे 'इंडियन ओपिनियन' के हरएक पाठक को बार-बार और बहुत ध्यान से पढ़ने की सलाह देते थे।

इसके साथ ही हॉफ्मायर कहती हैं कि गांधीजी पढ़ी हुई सामग्री को व्यवहार में लाना और आजमाना बहुत जरूरी मानते थे। पढ़ने का असली कारण तो वे इसी को मानते थे, अन्यथा पढ़ना व्यर्थ है। वैसे भी गांधीजी का कहना था कि, 'तुम्हारे ज्ञान की कीमत तुम्हारे कामों से होगी। पुस्तकें मस्तिष्क में भरने के बजाए उस ज्ञान को व्यवहार में उतारने पर ही उसका मूल्य होगा।' ऐसा कदाचित धीमी गति से पढ़ने व पढ़े हुए का मंथन करने पर ही संभव था।

पत्रकारिता व्यवसाय नहीं मिशन

महात्मा गांधी का यह मानना था कि पत्रकारिता कभी भी निजी हित या आजीविका कमाने का जरिया नहीं बनना चाहिए और अखबार के संपादक के साथ चाहे जो भी हो जाये, लेकिन उसे अपने देश के विचारों को सामने रखना चाहिए, नतीजा चाहे जो भी हो। उनका कहना था कि समाचार पत्र सेवाभाव से ही चलाये जाने चाहिए अन्यथा वे समाज का अहित करने के साधन बन जायेंगे। इसीलिए वे समाचार पत्र चलाने के लिए प्रचलित विज्ञापन मॉडल का विरोध करते थे। उनका यह दृढ़ मत था कि समाचार पत्र विज्ञापन द्वारा आने वाली कमाई से नहीं, अपितु पाठकों से होने वाली कमाई पर ही आधारित होने चाहिए। 'इंडियन ओपिनियन' के ही संदर्भ में अपनी किताब 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' में वे लिखते हैं कि, 'पहले उस साप्ताहिक (इंडियन ओपिनियन) में विज्ञापन लिए जाते थे। प्रेस में बाहर का फुटकर काम भी छापने के लिए स्वीकार किया जाता था। मैंने देखा कि इन दोनों कामों में हमारे अच्छे से अच्छे आदमियों को लगाना पड़ता था। विज्ञापन लेने ही हो तो

कौन से विज्ञापन लिए जायें और कौन से न लिए जायें, इसका निर्णय करने में हमेशा ही धर्म संकट खड़े होते थे। इसके सिवा, किसी आपत्तिजनक विज्ञापन को न लेने का मन हो, परन्तु विज्ञापन देने वाला कौम का कोई अग्रगण्य व्यक्ति हो, तो उसके बुरा मान जाने के भय से भी हमें न लेने योग्य विज्ञापन लेने के प्रलोभन में फंसना पड़ता था। विज्ञापन प्राप्त करने में और छपे हुए विज्ञापनों के पैसे वसूल करने में हमारे अच्छे से अच्छे आदमियों का समय खर्च होता था और विज्ञापनदाताओं की खुशामद करनी पड़ती सो अलग। इसके साथ यह विचार भी आया कि यदि अखबार पैसा कमाने के लिए नहीं, बल्कि केवल कौम की सेवा के लिए ही चलाना हो, तो वह सेवा जबरदस्ती नहीं की जानी चाहिए। कौम चाहे तो ही उसकी सेवा हमें करनी चाहिए। और कौम की इच्छा का स्पष्ट प्रमाण यही माना जाएगा कि कौम के लोग काफी बड़ी संख्या में साप्ताहिक के ग्राहक बनकर उसका खर्च उठा लें। इसके सिवा, हमने यह भी सोचा कि अखबार चलाने के लिए उसका मासिक खर्च निकालने की दृष्टि से कुछ व्यापारियों को सेवाभाव के नाम पर अपने विज्ञापन देने की बात समझाने की अपेक्षा यदि कौम के आम लोगों को इंडियन ओपिनियन खरीदने का कर्तव्य समझाया जाए तो यह ललचाने वाले लोगों और ललचाये जाने वाले लोगों दोनों के लिए कितनी सुन्दर शिक्षा हो सकती है? इन सारी बातों पर हमने सोच विचार किया और उस पर तुरन्त अमल भी किया। इसका नतीजा यह हुआ कि जो कार्यकर्ता विज्ञापन विभाग की झंझटों में फंसे रहते थे, वे अब अखबार को सुन्दर बनाने के प्रयत्नों में लग गए। कौम के लोग तुरन्त समझ गए कि इंडियन ओपिनियन की मालिकी और उसे चलाने की जिम्मेदारी दोनों उनके हाथ में है। इसके फलस्वरूप हम सब कार्यकर्ता निश्चिन्त हो गए।' गांधीजी का मानना था कि ग्राहकी के लिए पाठकों से निवेदन करने में कोई हर्ज नहीं। उन्होंने लिखा है, 'किसी भी हिन्दुस्तानी का हाथ पकड़ कर उससे इंडियन ओपीनियन का ग्राहक बनने की बात कहने में हमे लज्जा नहीं आती थी, बल्कि ऐसा कहना हम अपना धर्म समझते थे।'

विज्ञापन न लेने की यह नीति उन्होंने 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' के सन्दर्भ में भी जारी रखी। वह जानते थे कि अखबार में विज्ञापन लेंगे तो वह न सत्य की सेवा कर सकेंगे और न स्वतंत्र रह सकेंगे। उन्होंने न तो अन्य अखबारों के साथ प्रतियोगिता करने की कोशिश की और न वह अनुचित उपायों से अपने अखबारों की बिक्री बढ़ाने की इच्छा रखते थे। इसके बावजूद, यदि 'इंडियन ओपिनियन' के शुरूआती कुछ साल छोड़ दिए जायें तो उन्होंने कभी भी कोई अखबार घाटे में नहीं चलाया। यह स्वतंत्र अखबार चलाने का गांधीजी का वैकल्पिक मॉडल था जो आज भी प्रासंगिक जान पड़ता है।

यह सेवा भाव की ही प्रधानता थी कि गांधीजी उनकी देख-रेख में निकल रहे अखबार नियमित रूप से निकल सकें इस बात को बहुत गंभीरता से लेते थे। वे इसे समाज और कौम की तरफ से अपनी नैतिक जिम्मेदारी समझा करते थे। अनु बंद्योपाध्याय अपनी किताब 'बहुरूपी गांधी' में उल्लेख करती हैं कि कैसे काम के भारी बोझ होने के बावजूद गांधीजी को अपने पत्रों के लिए बहुत ज्यादा लिखना पड़ता था, और अकसर उन्हें बहुत रात तक या सबेरे तड़के उठकर काम करना पड़ता था। वह चलती हुई रेलगाड़ी में भी लिखते थे। उनके कुछ प्रसिद्ध वक्तव्यों या लेखों के ऊपर 'ट्रेन पर' लिखा होता था। जब उनका दाहिना हाथ थक जाता तब वह बाँए हाथ से लिखने लगते थे। उनकी बाँए हाथ की लिखावट ज्यादा साफ होती थी। बीमारी के बाद स्वास्थ्य लाभ करते समय भी वह प्रति सप्ताह तीन या चार लेख लिखते थे।

इसी सन्दर्भ में बंद्योपाध्याय बताती हैं कि गांधीजी के सहायकों को रेलगाड़ियों के पहुँचने, छूटने तथा डाक निकलने आदि के समय की पूरी और सही जानकारी रखनी पड़ती थी ताकि प्रकाशन के लिए तैयार सामग्री को वक्त से डाक में छोड़ा जा सके। एक बार महात्मा गांधी जिस ट्रेन से यात्रा कर रहे थे वह विलम्ब से चल रही थी और उस ट्रेन पर गांधीजी ने जो लेख लिखे थे, उन्हें समय से डाक भेजने की गुंजाइश नहीं थी। इसलिए उन अंग्रेजी के लेखों को अहमदाबाद स्थित अपने प्रेस में डाक से भेजने के बजाय गांधीजी ने उन्हें एक आदमी के हाथ सीधे बंबई भेजा। वहाँ छपकर वह अंक समय पर प्रकाशित हुआ। यह पत्रकार गांधी की अपने पाठकों के प्रति निष्ठा का अद्वितीय उदाहरण है।

अंत में, समाजोपयोगी पत्रकारिता को लेकर महात्मा गांधी की प्रतिबद्धता को इस बात से समझा जा सकता है कि जालियांवाला बाग और चौरी चौरा की पृष्ठभूमि में महात्मा गांधी ने 'यंग इंडिया' के 29 सितंबर 1921 के अंक में 'टैंपरिंग विथ लायलटी', 15 दिसंबर 1921 के

अंक में 'अ पजल एंड इट्स सोल्यूशन' और 23 फरवरी 1922 के अंक में 'शेकिंग द मेन्स' शीर्षक से तीन लेख लिखे। इन लेखों के कारण ही उन पर राजद्रोह का मुकदमा चला और उन्हें छः साल की सजा दी गई। गांधी गिरफ्तार करके 21 मार्च 1922 को पुणे के यरवदा जेल में भेज दिए गए। बाल गंगाधर तिलक के बाद वे गुलाम भारत के दूसरे ऐसे बड़े नेता थे जिन पर उनके द्वारा लिखे गये लेखों के चलते राजद्रोह का मुकदमा चला। कारावास के दौरान उन्होंने दो कालजयी पुस्तकें 'सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा' और 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' लिखी जो सबसे पहले उन्हीं के अखबार 'नवजीवन' में धारावाहिक रूप में छपी।

यह नैतिक पत्रकारिता को लेकर गांधीजी की वर्षो की साधना और समर्पण से जन्य आत्मबल का ही परिणाम था जब उन्होंने दिल्ली में 12 अप्रैल 1947 को प्रार्थना सभा में यह हक से कहने की हिम्मत की कि, 'मैं भी पुराना अखबारनवीस हूँ और मैंने उस अफ्रीका के जंगल में अच्छी-खासी अखबारनवीसी की है, जहाँ पर हिंदुस्तानियों को कोई पूछने वाला भी न था। अगर ये लोग अपना पेट पालने के लिए अखबार के पन्ने भरते हैं और उससे हिन्दुस्तान का बिगाड़ होता है तो उन्हें चाहिए कि वे अखबार का काम छोड़ दें और कोई दूसरा काम गुजारे के लिए खोज लें। अखबारों को अंग्रेजी में चौथी शक्ति बताया गया है। इनसे बहुत सी बातें बिगाड़ी या बनाई जा सकती हैं। यदि अखबार दुरुस्त नहीं रहेंगे तो फिर हिन्दुस्तान की आजादी किस काम की होगी।'

इसके साथ ही वे पाठक को भी चेताते हैं कि, 'हम लोग भी ऐसे हो गये हैं कि सवेरे उठते ही कुरान के बिना हमारा काम चलेगा, गीता-रामायण के बिना भी चल जायेगा, लेकिन अखबार के बिना हमारा काम बिलकुल ही नहीं चलेगा। बड़े-बड़े लोग भी अखबार के गुलाम बन गये हैं। अगर सवेरे अखबार न मिला तो हाय-तौबा मच जाती है। अखबार वालों ने भी हवाई बातें कर-कर के गुलाम बना डाला है लेकिन ये सारी बातें करीब-करीब निकम्मी ही होती हैं। मैं कहूँगा कि ऐसे निकम्मे अखबारों को आप फेंक दें। कुछ खबर सुननी हो तो दूसरों से जान-पूछ लें। अखबार न पढ़ेंगे तो आपको कोई नुकसान होनेवाला नहीं है। अगर पढ़ना ही चाहें तो सोच-समझकर ऐसे अखबार चुन लें जो हिन्दुस्तान की सेवा के लिए चलाये जा रहे हों, जो हिन्दू-मुसलमानों को मिल-जुलकर रहना सिखाते हों।' यह था पत्रकार गांधी का नैतिक बल।

दरअसल, महात्मा गांधी समाचार पत्रों को एक ऐसी ताकत के रूप में देखते थे जिसकी गोद में सृजन एवं विध्वंस दोनों ही पलते हैं। यह अकारण नहीं है कि अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं, 'समाचार पत्र एक जबरदस्त शक्ति है, किन्तु जिस प्रकार निरंकुश पानी का प्रवाह गाँव के गाँव डुबो देता है और फसल को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार कलम का निरंकुश प्रवाह भी नाश की सृष्टि करता है।' लेकिन साथ ही वे समाचार पत्रों की इस असीम ताकत पर किसी भी बाह्य अंकुश के हिमायती नहीं थे। उनका मानना था कि 'यदि ऐसा अंकुश बाहर से आता है, तो वह निरंकुशता से भी अधिक विषैला सिद्ध होता है। अंकुश तो अंदर का ही लाभदायक हो सकता है।' ऐसे में पाठक क्या करे? इसका भी उत्तर देते हुए गांधीजी कहते हैं कि संसार में उपयोगी और निकम्मी पत्रकारिता दोनों साथ-साथ ही चलते रहेगी। उनमें से ही मनुष्य को अपना चुनाव करना होगा।' यह गांधी की पत्रकारिता का पाठक-आधारित मॉडल है, जिसमें अंतिम जिम्मेदारी तो पाठक एवं समाज की ही बनती है।

सन्दर्भ सूची:

- अनु बंद्योपाध्याय, बहुरूपी गांधी, नयी दिल्ली: राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, 1971
- अमलेश राजू (सं), पत्रकार गांधी, नयी दिल्ली: डायमंड बुक्स, 2022
- इसाबेल हॉफ्मायर, गांधीज् प्रिंटिंग प्रेस: एक्सपेरिमेंट्स इन स्लो रीडिंग, कैंब्रिज: हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2013
- कमल किशोर गोयनका, गांधी: पत्रकारिता के प्रतिमान, नयी दिल्ली: सस्ता साहित्य मंडल, 2016
- कृपाशंकर चौबे, 'महात्मा गांधी की पत्रकारिता', www.hindisamay.com
- महात्मा गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, अहमदाबाद: नवजीवन ट्रस्ट, 1957
- महात्मा गांधी, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास, अहमदाबाद: नवजीवन ट्रस्ट, 1968
- महात्मा गांधी, सम्पूर्ण गांधी वाङमय, नयी दिल्ली: प्रकाशन विभाग
- राकेश सिंह (सं), गांधी की पत्रकारिता, गाजियाबाद: के.एल. पचौरी प्रकाशन, 2018

(लेखक गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के शोध अधिकारी हैं।)

संपर्क:

मो. 9717651017

विमर्श

महात्मा गांधी और सच्ची शिक्षा

कुबेर कुमावत

महात्मा गांधी की जब पुण्यतिथि और जयंती आती है तो मैं विशेष रूप से उनके व्यक्तित्व के बारे में सोचने लग जाता हूँ। गांधी को लेकर मुझे क्या कहना चाहिए इस विषयपर मैं आज भी जो सोच रहा हूँ वह काफी अलग है। मुझे वस्तुतः इतनी सोचने की कोई आवश्यकता नहीं है पर मैं गांधी को लेकर पिष्टपेषण से भरी बातें नहीं करना चाहता। सत्य, अहिंसा, शांति, मानवता, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता आदि कई ऐसे पक्ष हैं, जिन पर काफी मंथन हो चुका है। हो रहा है और होता ही रहेगा। यह गांधी की विवशता या जरूरत नहीं है बल्कि देश की है। गांधी की मृत्यु के बाद देश में गांधी के पुतले, रास्ते, चौराहे, स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, परियोजनाएँ, पुरस्कार, सम्मान, गीत, फिल्में सब कुछ बने, गांधी को जीने वाले और उनका अभिनय करने वालों की भी कमी नहीं हैं। हमने क्या किया कि गांधी को संत, महात्मा, देवता आदि बनाकर उनकी पूजा, अर्चना और प्रार्थना तक सीमित कर लिया। मुझे कुछ वर्ष पूर्व जनवादी लेखक संघ की जयपुर इकाई के एक सम्मेलन में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह मेरे लिए अनुभव के साथ-साथ जीवन को स्थिर बनाए रखने की एक औषधि के रूप में सहायक प्रसंग था। उसपर फिर कभी। उन तीन चार-दिनों में गांधी जयंती भी आ गयी। मुझे जिस आवास में ठहरने का लाभ प्राप्त हुआ वह राजस्थान सरकार के किसी विभाग का कार्यालय एवं अतिथिगृह था। गांधी जयंती के अवसर पर प्रातः से प्रार्थना, भजन आदि का आयोजन। विशेष बैठक व्यवस्था, सफेद स्वच्छ गद्दे, तकिए, गांधी की प्रतिमा, फुलहार, अगरबत्ती आदि सब कुछ अत्यंत करीने से, सलीके से। जिसे अत्यंत पवित्र, स्वच्छ, शांत, निरामय कहा जा सकता है ऐसा सब कुछ। बाद में मुझे कुछ विशेष याद नहीं क्योंकि मुझे सम्मेलन स्थल पर पहुंचना था। लेकिन मुझे कहना यह है कि वह केवल एक सरकारी औपचारिक प्रक्रिया के रूप में मुझे प्रतीत हुआ। क्यों? मैं कुछ कह नहीं सकता। जहाँ भी मुझे केवल दिखावा एवं प्रदर्शन जैसा प्रतीत होता है मुझे एक विशेष तरह

सत्य, अहिंसा, शांति, मानवता, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय एकता आदि कई ऐसे पक्ष हैं, जिन पर काफी मंथन हो चुका है। हो रहा है और होता ही रहेगा। यह गांधी की विवशता या जरूरत नहीं है बल्कि देश की है। गांधी की मृत्यु के बाद देश में गांधी के पुतले, रास्ते, चौराहे, स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, परियोजनाएँ, पुरस्कार, सम्मान, गीत...।

की कोफ्त होती है। पता नहीं मैं अपने जीवन में आनेवाली हर चीज के विषय में मौलिकता के प्रति इतना आग्रही एवं सचेत क्यों होता जा रहा हूँ? यह मेरी भावुकता कदापि नहीं है। ऐसा क्यों लगता है कि बहुत कुछ ठीक और सुव्यवस्थित नहीं है? लेकिन आप कुछ भी कहें पर जब गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो उनको भी भारत का तत्कालीन चित्र कुछ अव्यवस्थित एवं अस्वीकार्य प्रतीत हो रहा था। 4 फरवरी, 1916 के एक कार्यक्रम में अपने भाषण में जिसमें वाइसरॉय और कई राजा-महाराज सम्मिलित हुए थे गांधी ने सबको खरी-खोटी सुनाई। सच-सच और बेबाक कहा। गरीब एवं दरिद्र भारत के राजा-महाराजा रत्नाभूषणों से इतने संपन्न कैसे हो सकते हैं? यह मूल प्रश्न उपस्थित हुआ था गांधी के सामने। गांधी का भाषण ऐनी बेसेन्ट को रोकना पड़ा। कई राजा-महाराजा गांधी के भाषण से असंतुष्ट होकर बीच में ही चले गए। कुछ लोग कहते रहे कि आप बोलते रहो। कई लोग नारा लगाते रहे कि इसका भाषण बंद करो लेकिन गांधी डरे नहीं। क्या गांधी पूंजीपतियों, सामंतों एवं शोषक वर्ग के प्रति घृणा करते थे?

अब जब गांधी के बारे में कुछ लिखना ही है तो मुझे केवल उनके हिंद स्वराज की बात करनी है। प्रश्न और उत्तर शैली में लिखित गांधी की इस पुस्तक में केवल मुझे उनके शिक्षाविषयक विचारों पर ही अपनी बात रखनी है। वह इसलिए कि मैं एक अध्यापक हूँ और मैं यह बड़ी आंतरिक तीव्रता के साथ चाहता हूँ कि देश की शिक्षाव्यवस्था में शीघ्र ही मजबूत परिवर्तन की आवश्यकता है। यह परिवर्तन किस दिशा में होने चाहिए? शिक्षा लेने और देने के मामले में कैसे और क्या सुधार हो? कब और कहाँ-कहाँ पर हो इसपर चिंतन की गहन आवश्यकता है। गांधी के व्यक्तित्व का यदि आप बारीकी से अवलोकन करेंगे तो आपको प्रतीत होगा कि वे एक राजनेता के रूप में बड़ी हद तक असफल कहे जा सकते हैं। उनका चिंतन, दर्शन, आचरण, निर्णयक्षमता और दृष्टि उन्हें न शासक के रूप स्थापित करती है और न नेता के रूप में। हिंद स्वराज में जब वे अनेक विषयों एवं समस्याओं पर अपने विचार प्रस्तुत करते हैं तो प्रतीत होता है कि वे देश की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक एवं आर्थिक संरचना में बुनियादी परिवर्तनों को लेकर काफी चिंतित एवं आग्रही हैं। वे भारत की पूर्ण पारिस्थितिकी को समझते थे। उसके अंतर्विरोधों एवं विडंबनाओं से भी परिचित थे। अतः वे पूर्ण रूप से प्रयत्नशील थे कि भारत को सर्वथा एक संपूर्ण सांस्कृतिक इकाई के रूप में कैसे विकसित एवं समृद्ध किया जा सकता है? हिंद स्वराज में जहाँ तक उनके शिक्षाविषयक विचारों का प्रश्न है तो वे काफी प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं। अच्छी शिक्षा-बुरी शिक्षा, ऊंची शिक्षा-नीची शिक्षा, नैतिक शिक्षा-व्यावहारिक शिक्षा को लेकर गांधी के विचार एकदम स्पष्ट हैं। अक्षरज्ञान को मात्र शिक्षा समझ लेना एक बहुत बड़ी भूल है ऐसा गांधी मानते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि शिक्षा का आभूषण के तौर पर उपयोग नहीं होना चाहिए। शिक्षा दंभ करने की चीज नहीं है। आज हम वर्तमान में क्या देखते हैं कि औपचारिक डिग्रियाँ प्राप्त लोगों में परस्पर श्रेष्ठता को लेकर कितना दंभ एवं असंतोष है? एकदूसरे को शिक्षा के स्तर पर नीचा दिखाने में वे कोई कसर नहीं रखते। मैंने देखा कि मेरे महाविद्यालय में अभी-अभी जिन युवकों को पीएचडी मिली हैं उनके शरीर, स्वर एवं स्वभाव में एक खास तरह की अकड़ एवं श्रेष्ठताबोध उत्पन्न हो गया है। यही चीज IAS, IPS, MBBS, MPSC, CA, MB की परीक्षाएँ एवं डिग्रियाँ प्राप्त लोगों में भी देखने को मिलती है। यह वास्तव में सच्ची शिक्षा का परिणाम नहीं है। यह एक दुर्बल एवं निरुपयोगी शिक्षा है। ज्ञानात्मक जो शिक्षा है जैसे भूगोल, बीजगणित, विज्ञान, चिकित्सा, अभियांत्रिकी आदि जिसे हम उच्चशिक्षा भी कहते हैं के विषय में गांधी के विचार द्रष्टव्य हैं। वे कहते हैं कि मैंने ऐसा ज्ञान पा लिया तो उससे क्या? किस उद्देश्य से मैंने यह ज्ञान प्राप्त किया? उससे मेरा और अन्य लोगों का कितना और कैसा भला हुआ? इस संदर्भ में वे अंग्रेज विद्वान हक्सले के विचार प्रस्तुत करते है। हक्सले कहता है,-'उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पायी है, जिसके शरीर को ऐसी आदत डाली गयी है कि वह उसके बस में रहता है, जिसका शरीर चैन से और आसानी से सौंपा हुआ काम करता है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पायी है, जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत एवं न्यायदर्शी है। उसने सच्ची शिक्षा पायी है जिसका मन कुदरती कानूनों से भरा है

और जिसकी इंद्रियाँ उसके बस में हैं, जिसके मन की भावनाएँ बिलकुल शुद्ध है और जिसे नीच कामों से नफरत है और जो दूसरों को अपने जैसा मानता है। ऐसा आदमी ही सच्चा शिक्षित माना जायेगा क्योंकि वह कुदरत के कानून के मुताबिक चलता है। कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेगा।'

गांधी बाद में कहते हैं कि ऊपर जो शास्त्र मैंने गिनाये हैं उनका एक अच्छा इंसान बनने में मुझे कोई उपयोग नहीं हुआ है। स्पष्ट है कि एक अच्छे इंसान का निर्माण करने में ऊंची शिक्षा असफल है। प्राथमिक शिक्षा को लीजिये या ऊंची शिक्षा को, उसका उपयोग मुख्य बात में नहीं हो रहा है। उससे न हम अपना कर्तव्य समझ पा रहे हैं और न स्वाभाविक और सच्चा मनुष्य बन पा रहे हैं। गांधी के मुख से प्रस्तुत भारत की शिक्षा का यह हाल बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक का है। अब आज हम किस स्थिति में हैं? गांधी क्या कह रहे हैं कि यदि मैंने ऊँची या नीची शिक्षा नहीं पायी होती तो मैं यह नहीं मानता कि मैं निकम्मा आदमी हूँ। जहाँ तक अक्षर ज्ञान की बात है तो गांधी की दृष्टि में अक्षर ज्ञान हर हाल में बुरा नहीं है। बस उस ज्ञान की मूर्ति की तरह पूजा नहीं करनी चाहिए। आज क्या होता है कि लोग अपनी डिग्री को मूर्ति की तरह पूजने लगते हैं। उसे प्रदर्शन या दिखावे की चीज मानते हैं। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग तो इस मामले में अधिक दंभी दिखाई देते हैं। यदि आपको कोई भाषा अच्छी तरह से आती है, आप किसी वस्तु को बनाने में कुशल है, आप किसी रोगी का इलाज करने में प्रवीण है, आप उत्कृष्ट वक्ता, कवि, लेखक, पत्रकार आदि हैं परंतु आप चरित्रवान एवं नीतिमान नहीं है तो आप का जीवन निरर्थक है। गांधी कहते हैं कि हमारी स्कूलों में नीति एवं सद्‌चरित्र निर्माण को अधिक प्राथमिकता होनी चाहिए। पैसे कमाने के ज्ञान की नहीं। वे प्रशंसा करते हैं महाराज गायकवाड़ की अपने राज्य में योग्य शिक्षा देने की पहल को लेकर। जिसे लाजिमी शिक्षा कहा गया है। उनका कहना है कि लाजिमी शिक्षा अक्षर ज्ञान से श्रेष्ठ चीज है। वे एक किसान का उदाहरण देते हैं कि जो देहात में और झोपड़ी में रहता है। वह जानता है कि माँ-बाप, पत्नी, बच्चों के साथ कैसे व्यवहार करना है। चाल-ढाल, आचरण, रहन-सहन का भी उसे अच्छा ज्ञान है। वह नीति के नियम समझकर परिवार का पालन करता है लेकिन उसे दस्तखत करना नहीं आता। उस आदमी को अक्षरज्ञान देकर आप उसके सुख में कौनसी वृद्धि करना चाहते हैं? उसकी गरीबी या दरिद्रता के प्रति आप उसके मन में कौनसा असंतोष पैदा करना चाहते हैं? वह तो बिना अक्षरज्ञान के भी हो सकता है। पर केवल अक्षरज्ञान देने मात्र से चारित्रिक विकास नहीं हो सकता। अक्षरज्ञान देने की बात हमने पश्चिम के प्रभाव में आकर चलायी हैं।

गांधी अपने समय में स्कूलों में प्रथम आनेवाले छात्र नहीं थे और न बहुत कुछ मेधावी कहे जा सकते हैं। फिर वे महात्मा कैसे बने? इसकी कुछ तो समझ हमें होनी चाहिए? परीक्षाओं में ऊंचे अंकों के साथ पास होना कुछ बड़ी बात नहीं है। ऐसी उपलब्धियों को विशिष्ट तकनीक के साथ अर्जित किया जा सकता है। उत्तम मनुष्य बनने की कोई तकनीक अभी तक ईजाद नहीं हुई है। हर कोई कहता है कि मैंने बापू को जाना। कैसे जाना? बापू को जीना बहुत बड़ी बात है। आप अपने जीवन में दस प्रतिशत भी बापू को जीकर दिखाये तो मानूँगा। हमें गांधी की मूर्ति की तरह पूजा नहीं करनी चाहिए। उनके उसूलों को अपनाना चाहिए। ऊंची शिक्षा या अंग्रेजी शिक्षा से अहंकार में वृद्धि होती है यह कहना भी वे नहीं भूले। भारत को गुलाम बनानेवाले तो हम अंग्रेजी जानने वाले लोग ही हैं। वे कहते थे कि विशिष्ट उम्र में पहुँचने पर ही बालक को अंग्रेजी या किसी शास्त्र विषय की शिक्षा दी जाए। पैसे कमाने की दृष्टि से अंग्रेजी सीखने का भी गांधी ने विरोध किया। धर्म की शिक्षा देने के भी गांधी समर्थक थे। कैसे? पता नहीं। यह काम मुश्किल है क्योंकि धर्म की कुंजी मुल्लों, दस्तूरों और ब्राह्मणों के हाथ में हैं। अंत में वे कहते हैं कि भारत कभी नास्तिक नहीं बनेगा। हिंदुस्तान की भूमि पर नास्तिक कभी फल-फूल ही नहीं सकते।

संपर्क:
प्लाट नं. 38,1762/, केले नगर,
ढेकू रोड, अमलनेर- 425401
जिला-जलगाँव (महाराष्ट्र)
मो.- 9823660903

महात्मा गांधी का दक्षिण अफ्रीका में गमनागमन

रूमा पाठक

अपनी वकालत की शिक्षा प्राप्त करने के बाद जब गांधी जी लोगों की व्यर्थ की खुशामदें नहीं कर पाए एवं अनुचित रीतियों से उन्हें रिझाना नहीं चाहा तथा काठियावाड़ की राजनीतिक खटपट की भी उन्हें अनुभूति थी एवं उनके लिए उस जहरीले वातावरण में रहना असहनीय हो गया था तब उन्हें बराबर इस बात की चिंता लगी रहती थी कि वह अपनी स्वतंत्रता किस तरह बचा सकेंगे? इसी बीच उनके भाई के पास पोरबंदर की एक मेमन पेढ़ी का संदेशा आया कि उनका व्यापार दक्षिण अफ्रीका में है, उनकी पेढ़ी बड़ी है उनका एक बड़ा केस बहुत समय से चल रहा है अगर आपके भाई को भेजें तो वह हमारी मदद करेगा और इससे उसकी भी कुछ मदद हो जाएगी, वह केस हमारे वकील को समझा सकेगा। गांधीजी के भाई ने उन्हें दादा अब्दुल्ला के भागीदार स्वर्गीय सेठ अब्दुल करीम झवेरी से मिलवा दिया। उनके बीच बातचीत हुई, करीम सेठ ने कहा एक साल से अधिक आपकी जरूरत नहीं पड़ेगी आपको आने-जाने का पहले दर्जे का किराया और रहने-खाने के खर्च के अलावा 105 पौंड भी देंगे।

गांधी जी का मन नहीं माना और उन्होंने मन ही मन सोचा कि इसे वकालत नहीं कह सकते यह तो नौकरी थी लेकिन उन्हें तो जैसे-तैसे हिंदुस्तान छोड़ना था, इसलिए गांधी जी ने सेठ अब्दुल करीम का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और दक्षिण अफ्रीका जाने के लिए तैयार हुए। वियोग का जो दुख विलायत जाते समय हुआ था वैसा दक्षिण अफ्रीका जाते समय नहीं हुआ। इस बार केवल पत्नी के साथ का वियोग दुखदाई था। विलायत से लौटने के बाद उन्हें दूसरे पुत्र की प्राप्ति हुई थी।

गांधी जी का मन नहीं माना और उन्होंने मन ही मन सोचा कि इसे वकालत नहीं कह सकते यह तो नौकरी थी लेकिन उन्हें तो जैसे-तैसे हिंदुस्तान छोड़ना था, इसलिए गांधी जी ने सेठ अब्दुल करीम का यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और दक्षिण अफ्रीका जाने के लिए तैयार हुए। वियोग का जो दुख विलायत जाते समय हुआ था वैसा दक्षिण अफ्रीका जाते समय नहीं हुआ। इस बार केवल पत्नी के साथ का वियोग दुखदाई था। विलायत से लौटने के बाद उन्हें दूसरे पुत्र की प्राप्ति हुई...।

दक्षिण अफ्रीका पहुँचना गांधी जी के लिए आसान न था। उन्हें दादा अब्दुल्ला के मुंबई वाले एजेंट की मारफत टिकट खरीदना था लेकिन स्टीमर में केबिन खाली न थी तथा गांधी जी ने डेक में जाने से इनकार कर दिया। एजेंट की अनुमति लेकर उन्होंने स्वयं टिकट प्राप्त करने का प्रयत्न किया एवं बेस्ट सीमा के बड़े अधिकारी से मिले, उसकी केबिन में एक हिंडोला खाली रहता था जो वह उन्हें देने को तैयार हो गया। सेठ से चर्चा हुई और टिकट खरीदवाया गया। इस तरह सन् 1893 के अप्रैल महीने में वह उमंगभरा हृदय लेकर अपनी तकदीर आजमाने के लिए दक्षिण अफ्रीका को रवाना हुए तथा जंजीबार से मोजांबिक और वहाँ से मई महीने के लगभग

अंत में वे नाताल पहुँचे। डरबन नाताल का बंदरगाह कहा जाता है। अब्दुल्ला सेठ उन्हें लेने आए थे। वे उन्हें घर ले गए। अब्दुल्ला सेठ ने अपने कमरे के पड़ोस वाला कमरा उन्हें दिया एवं अपने भाई द्वारा भेजे गए कागज पत्र उन्होंने पढ़े और वह अधिक घबराए गांधीजी की साहबी ठाठ वाली रहन-सहन उन्हें खर्चीली मालूम हुई। अब्दुल्ला सेठ पढ़े-लिखे बहुत कम थे लेकिन उनका अनुभव ज्ञान प्रचुर था एवं हिंदुस्तानियों में उनकी बड़ी इज्जत थी। उनके साथ रहने से गांधी जी को इस्लाम का व्यावहारिक ज्ञान मिला तथा वह एक-दूसरे के साथ धर्म चर्चा करने लगे। दूसरे या तीसरे दिन वे उन्हें डरबन की अदालत दिखाने ले गए तथा कुछ लोगों से उनकी जान पहचान कराई एवं अदालत में अपने वकील के पास बैठाया। मजिस्ट्रेट गांधी जी की ओर देखता रहा और उसने उन्हें पगड़ी उतारने को कहा। गांधी जी यह करने को तैयार नहीं थे और ऐसा करने से इन्कार करते हुए उन्होंने अदालत छोड़ दी। उनके भाग्य में यहाँ भी लड़ाई ही लिखी थी। उन दिनों दक्षिण अफ्रीका में गोरे, अश्वेतों का अपमान करते थे। अश्वेतों को कुली कहा जाता था। गोरों और अश्वेतों की रहने की बस्तियाँ भी अलग थीं। अफ्रीका की जनता काली यानी नीग्रो थी। थोड़ी संख्या में भारतीय भी थे जो व्यापारी, मजदूर और वकील थे। वे गुजराती, तमिल और तेलुगु भाषा बोलते थे। भारतीयों में मुसलमान, ईसाई, पारसी इत्यादि थे। भारतीय विभिन्न धर्मों के तो थे ही साथ-साथ वे केवल काम के समय ही एक दूसरे से मिलते थे अन्यथा अपने ही धर्मावलंबियों के बीच संबंध रखते थे। गांधी जी ने उस पगड़ी के किस्से को लेकर अपने और पगड़ी के बचाव में अखबारों के लिए एक पत्र लिखा। अखबारों में उनकी पगड़ी की खूब चर्चा चली और तीन-चार दिन के अंदर ही अनायास दक्षिण अफ्रीका में उनका प्रचार हो गया। गांधी जी का यह पहला अन्याय के विरुद्ध असहयोगी कार्य था। अफ्रीका के अखबारों में लेख के प्रकाशित होते ही अफ्रीकन जनता उनके समर्थन में खड़ी हो गई एवं दक्षिण अफ्रीका के लोग गांधी जी को कुली बैरिस्टर के रूप में जानने लगे।

डरबन में अभी वे जान पहचान बढ़ा ही रहे थे कि इतने में पेढ़ी के वकील की ओर से पत्र आया कि केस के लिए तैयारी की जानी चाहिए और इसके लिए या तो अब्दुल्ला सेठ को स्वयं प्रिटोरिया आना चाहिए या किसी को यहाँ भेजना चाहिए। सेठ ने गांधी जी से जाने के बारे में पूछा। इस पर उन्होंने कहा कि मुझे केस समझाएँ तो मैं बताऊँ। उन्होंने अपने मुनीम को केस समझाने में लगाया। इसमें गांधी जी ने यह पाया कि इस केस का आधार बही-खातों पर है, जमा-खर्च के हिसाब को जानने वाला व्यक्ति ही इस केस को समझा और समझ सकता है जबकि गांधी जी का इस विषय में ज्ञान ना करके बराबर था। इसे समझने के लिए उन्होंने जमा-खर्च के हिसाब की किताब खरीदी और उसे पढ़ा। इसके बाद उनमें थोड़ा आत्मविश्वास पैदा हुआ और मामला कुछ समझ में आया और वह प्रिटोरिया जाने के लिए तैयार हुए। सेठ ने गांधी जी को आश्वासन दिलाया कि वह अपने वकील से बात कर लेंगे और उनके रहने का प्रबंध हो जाएगा परंतु गांधी जी ने इसके लिए मना कर दिया और कहा कि यदि मैं उनके घर ठहरूंगा तो आपके सभी पत्र वहाँ पहुँचेंगे और यदि हमारी बातचीत को कोई पढ़ लेगा तो इससे हमारे केस को नुकसान पहुँचेगा इसीलिए उनके साथ जितना कम संबंध रहे उतना ही अच्छा इसीलिए आप निश्चिंत रहें, मैं अपने लिए घर स्वयं ढूँढ लूँगा लेकिन मिलता सबसे रहूँगा और कोशिश करूँगा कि शांति वार्ता से ही सारी बात सुलझ जाए। सातवें-आठवें दिन वे डरबन से रवाना हुए और इसके लिए उन्होंने ट्रेन का पहले दर्जे का टिकट खरीदा। नाताल की राजधानी मैरित्सबर्ग में ट्रेन करीब 9 बजे पहुँची। एक गोरा मुसाफिर आया और उसने गांधी जी की ओर देखा और अपने से भिन्न रंग वाला पाकर वह एक-दो अफसरों को अपने साथ बुला लाया और उन अफसरों ने गांधी जी को उस डिब्बे से जाने को कहा परंतु उन्होंने जाने से इनकार कर दिया। इस पर सिपाही आया और उसने उनका हाथ पकड़ा और उन्हें धक्का देकर नीचे उतारा एवं उनका सामान भी उतार दिया। ट्रेन रवाना हो गई और गांधी जी वेटिंग रूम में बैठे रहे।

डरबन में अभी वे जान पहचान बढ़ा ही रहे थे कि इतने में पेढ़ी के वकील की ओर से पत्र आया कि केस के लिए तैयारी की जानी चाहिए और इसके लिए या तो अब्दुल्ला सेठ को स्वयं प्रिटोरिया आना चाहिए या किसी को यहाँ भेजना चाहिए। सेठ ने गांधी जी से जाने के बारे में पूछा। इस पर उन्होंने कहा कि मुझे केस समझाएँ तो मैं बताऊँ।

दूसरे दिन उन्होंने सूर्योदय होने पर रेलवे के जनरल मैनेजर को तार भेजकर घटना से अवगत कराया यह गांधी जी का अफ्रीका में दूसरा सत्याग्रह था। गांधी जी ने इस पर सोचा कि या तो उन्हें अपने अधिकारों के लिए लड़ना चाहिए अथवा अपने देश लौट जाना चाहिए अन्यथा जो भी अपमान हो उसे सहन करके प्रिटोरिया पहुँचना चाहिए और इस केस को निपटाकर वापस अपने देश जाना चाहिए। केस को लटकता छोड़कर भागना तो कायरता मानी जाएगी क्योंकि यह रोग दक्षिण अफ्रीका में महारोग का रूप ले चुका था जिसका नाम था रंगभेद।

अगले दिन गांधी जी ने घोड़ागाड़ी से यात्रा आरंभ की। उसमें एक गोरा भी यात्रा कर रहा था । गोरा अंदर सीट पर बैठना चाह रहा था। अत: कोचवान ने गांधी जी को आगे अपने पास बिठा लिया। थोड़ी देर बाद गोरे को सिगरेट पीने की तलब लगी, उसने गांधी जी को अंदर सीट पर बैठने को कहा ताकि वह कोचवान के बराबर में बैठकर सिगरेट पी सके। गांधी जी ने गोरे की बात को अनसुना करके अंदर बैठने से मना कर दिया। गोरे यात्री ने इस पर उन्हें मारना शुरू कर दिया। गांधी जी मार खाते रहे पर अपनी सीट से नहीं हिले। आखिर में वह गोरा उन्हें मारते मारते थक गया। इस प्रकार गांधी जी का पहला सत्याग्रह सफल हुआ।

अफ्रीका में भारतीयों को प्रतिदिन अपमान सहने पड़ते थे अन्याय का विरोध करने वाले प्रथम व्यक्ति महात्मा गांधी थे। उन्होंने अफ्रीका में नाताल इंडियन कांग्रेस नामक संस्था की स्थापना की एवं इंडियन ओपिनियन नामक साप्ताहिक पत्र का अंग्रेजी, गुजराती, तमिल और हिंदी में प्रकाशन प्रारंभ किया।

दक्षिण अफ्रीका का एक दूसरा प्रांत ट्रांसवाल था। वहाँ की विधानसभा में एक बिल आने वाला था जिसके अंतर्गत केवल प्रत्येक भारतीय पर 25 पौंड का टैक्स लगाया जाना था जिसका भारतीय मजदूरों पर बहुत बड़ा आर्थिक प्रभाव पड़ने वाला था। अफ्रीका में गांधी जी का मुकदमों का कार्य समाप्त हो चुका था, वह भारत आने की तैयारी कर रहे थे। उनके विदाई समारोह के दिन भारतीयों ने उनसे आग्रह किया कि वह एक महीना और अफ्रीका में रुककर उनका मार्गदर्शन करते हुए भारतीयों पर लगाए जाने वाले टैक्स के विरोध में सहयोग दें। गांधी जी ने एक महीना रुकना स्वीकार किया। यह एक महीना 21 साल के लंबे अंतराल में बदल गया और उन्हें 21 साल और अफ्रीका में रहना पड़ा। बीच में तीन बार दो-चार महीनों के लिए गांधी जी भारत भी आए। प्रत्येक भारतीय पर इस टैक्स के विरुद्ध नाताल इंडियन कांग्रेस ने आंदोलन चलाया, तब ट्रांसवाल की विधानसभा ने टैक्स 25 पौंड से घटाकर 3 पौंड लगाने की योजना बनाई। इसका भी विरोध भारतीयों ने गांधी जी के नेतृत्व में किया क्योंकि यह टैक्स अन्य लोगों पर नहीं था। लंबे संघर्ष के बाद विधानसभा को इस टैक्स का सुझाव भी वापस लेना पड़ा। विधानसभा ने एक नया कानून पास करने का प्रयास किया, जिसके अंतर्गत गोरों को छोड़कर अन्य सभी को विवाह दोबारा से रजिस्टर कराने और हाथों की छाप देने का कानून बनाने का प्रयास हुआ। इस कानून के विरोध में गांधी जी ने वहाँ की स्त्रियों को आंदोलन करने के लिए प्रेरित किया। हजारों स्त्रियाँ सत्याग्रह करके जेल गई, जिनमें उनकी अपनी पत्नी कस्तूरबा गांधी भी थीं। उन दिनों दक्षिण अफ्रीका के उपनिवेशों पर भी इंग्लैंड की सत्ता थी। गांधी जी ने अन्यायों के खिलाफ हजारों हस्ताक्षरों से युक्त अर्जियाँ इंग्लैंड के शासकों को भिजवाई। गांधी जी ने फिनिक्स आश्रम और टॉलस्टॉय फॉर्म की स्थापना की। सन 1909 में अफ्रीका में बसे भारतीयों के प्रतिनिधि के रूप में गांधी जी इंग्लैंड गए और उनकी समस्याओं की ओर अंग्रेजी सत्ता का ध्यान आकर्षित किया वापस जहाज में लौटते हुए गांधी जी ने हिंद स्वराज नाम की मौलिक पुस्तक गुजराती में लिखी।

सन 1914 में प्रथम विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया। गांधी जी को विश्वास था कि युद्ध में विजयी होने के बाद अंग्रेज भारतीयों को कुछ संवैधानिक अधिकार अवश्य देंगे इसलिए उन्होंने विश्व युद्ध में अंग्रेजों की मदद के लिए रंगरूटों की भर्ती प्रारंभ की।

इसी रंगभेद को समाप्त करने के लिए गांधी जी ने एक लंबी लड़ाई लड़ी एवं अंत में दक्षिण अफ्रीका से रंगभेद को पूर्णत: समाप्त करके वे विजयी होकर भारत लौटे। यह विजय उनके साथ-साथ हर उस व्यक्ति की विजय थी जिसके साथ रंग के आधार पर भेदभाव किया गया था।

संपर्क:

एम.एम. पब्लिक स्कूल, वसुधा एन्क्लेव, पीतमपुरा, दिल्ली

मो. 9871272400

जब महात्मा गांधी का समाधि स्थल बना

संतोष बंसल

आज के समय का यह दुर्भाग्य है कि आम आदमी भी आधुनिक तकनीक और चमचमाती चकाचौंध में आत्ममुग्ध है। वह 'स्मार्ट स्क्रीन' पर सोशल मीडिया की आभासी दुनिया में जी रहा है, जिससे वह क्षण भर भी हट नहीं पाता। स्थिति यह हो गयी है कि चाहे राह चलता पैदल व्यक्ति हो या वाहन में सवार चालक, उसका आधा ध्यान फोन के पटल पर टिका रहता है। इसीलिए न तो नयी पीढ़ी भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास से परिचित है और न ही उनके संघर्ष से। कितने युवा हमारे जननायकों के त्याग और आजादी के दीवानों के बलिदान से परिचित हैं? सम्भवतः बहुत कम, यही कारण है कि पिछले दिनों प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने कहा था कि महात्मा गांधी पर फिल्म बनने के बाद लोगों को उनके विषय में जानकारी हुई। यह सुनकर कुछ लोगों को हैरानी हो रही थी, वस्तुतः यह कड़वी सच्चाई है। लेकिन एक समय ऐसा था, जब अंग्रेजों की गुलामी से छूटने के लिए हरेक भारतवासी अपने प्राणों को दांव पर लगा रहा था, हमारे जननायकों की एक हुंकार पर वे सर पर कफन बांधने को तैयार रहते थे। फिर आजादी के उपरान्त देश विभाजन की कठिन स्थिति और बापू की हत्या से उत्पन्न विकट परिस्थिति में भी, बहुत सारी चुनौतियों के बीच देशभक्तों ने राष्ट्र के नवनिर्माण में रात -दिन एक कर दिए थे। यह स्थिति ऐसे समय हो गयी थी, जबकि देश ठीक से बँटवारे के दंश से भी बाहर नहीं निकला था। क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के छह महीने के बाद ही 30 जनवरी 1948 को राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की हत्या हो गई, जिससे प्रत्येक भारतवासी स्तब्ध था। ऐसे में एक तरफ तो देश में कोई अराजक माहौल न बने, इसका ख्याल रखना था। दूसरी ओर भारत ही नहीं, विश्व भर में ख्याति प्राप्त बापू सरीखे राजनेता को आखिरी विदाई देनी थी। और कांग्रेस कार्यसमिति को सुरक्षा इंतजाम के साथ अंत्येष्टि स्थल भी तय करना था। अतः नेहरू केबिनेट की बैठक में तत्काल अंत्येष्टि स्थल को चुना और सुरक्षा के सभी नियम निर्धारित किये।

आज के समय का यह दुर्भाग्य है कि आम आदमी भी आधुनिक तकनीक और चमचमाती चकाचौंध में आत्ममुग्ध है। वह 'स्मार्ट स्क्रीन' पर सोशल मीडिया की आभासी दुनिया में जी रहा है, जिससे वह क्षण भर भी हट नहीं पाता। स्थिति यह हो गयी है कि चाहे राह चलता पैदल व्यक्ति हो या वाहन में सवार चालक, उसका आधा ध्यान फोन के पटल पर टिका रहता है। इसीलिए न तो नयी पीढ़ी भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास से परिचित है और न ही उनके संघर्ष से।

चूँकि निर्णय लिया गया था कि दिल्ली में राजघाट पर बापू का अंतिम संस्कार किया जाये, क्योंकि यह स्थल राजधानी के मध्य में और यमुना नदी के किनारे स्थित था। इसीलिए सम्बंधित अफसरों और विभागों को अंत्येष्टि स्थल की सारी व्यवस्था करने के निर्देश दिए गए थे। दिल्ली के इंस्पेक्टर जनरल पुलिस डब्ल्यू.वी.संजीवी को अंत्येष्टि वाले दिन कानून व्यवस्था बनाये रखने के आदेश थे। अतएव सरदार पटेल, पंडित नेहरू और कुछ गणमान्य नेता रात के नौ बजे अंत्येष्टि स्थल का निरीक्षण करने पहुंचे। पंडित नेहरू तथा सरदार पटेल ने उस स्थल का निरीक्षण करके, सुरक्षा का सारा बंदोबस्त 'चेक' किया। यमुना नदी के 'राजघाट द्वार' के निकट ही बापू के अंतिम संस्कार की तैयारी की जा रही थी, जिसके लिए एक चबूतरे का निर्माण किया जा रहा था। जनवरी की रात के समय चारों और घना कोहरा था और ओस की बूंदें भी आंसुओं की तरह गिर कर अपना दु:ख प्रकट कर रही थी। अगले दिन 31जनवरी 1948 को बिरला हाउस से शवयात्रा 'राजघाट' की ओर बढ़ने लगी, सैंकड़ों लोगों ने बापू की मौत के गम में अपने सर मुंडवा लिए। शव वाहन पर पंडित नेहरू, सरदार पटेल और गांधी जी के दो पुत्र रामदास और देवदास बैठे थे तथा अंतिम यात्रा जनपथ और इंडिया गेट से गुजरती हुई 4 बजकर 25 मिनट पर राजघाट पहुँची। आकाशवाणी पर पहली बार अंत्येष्टि का आँखों देखा हाल सुनाया जा रहा था, जिसकी कमेंट्री का दायित्व मेलविल डिमेलो पर था। रेडियो की महान हस्ती डिमेलो की भावपूर्ण आवाज में कमेंट्री सुनकर, करोड़ों हिन्दुस्तानियों की आँखें नम हो गई। राजघाट पर लार्ड माउंटबेटन, उनकी पत्नी, भारतीय सेना के 'ब्रिटिश कमांडर इन चीफ' राय बाउचर भी वहां मौजूद थे। तब पुत्र देवदास ने अपने पिता को मुखाग्नि दी और बापू की नश्वर देह अग्नि में 'सुपुर्द–ए–खाक' हुई। उस समय अंत्येष्टि स्थल तक केवल पत्थरों की एक पतली पगडंडी बनी थी और दीवार के घेरे के भीतर बापू का अंतिम संस्कार हुआ।

उस वक्त महात्मा गांधी की हत्या से सारा देश सदमे में था और उनके अंतिम संस्कार की गवाह बनने के लिए बेतहाशा भीड़ वहां पहुँच रही थी। विदेशों के अनेक राजनयिक भी दु:ख की इस घड़ी में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने पहुंचे थे, राजघाट बार-बार 'बापू अमर रहे' के नारों से गूंजने लगा था। इस मारक आघात के कुछ दिनों उपरान्त कांग्रेस कार्यसमिति ने सर्वसम्मति से कहा कि राष्ट्रपिता की याद में एक 'स्मारक कोष' की स्थापना की जाये। क्योंकि सबका मानना था कि उनके स्थूल स्मारक तो न केवल भारत में बल्कि दुनिया भर में ...।

उस वक्त महात्मा गांधी की हत्या से सारा देश सदमे में था और उनके अंतिम संस्कार की गवाह बनने के लिए बेतहाशा भीड़ वहां पहुँच रही थी। विदेशों के अनेक राजनयिक भी दु:ख की इस घड़ी में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने पहुंचे थे, राजघाट बार–बार 'बापू अमर रहे' के नारों से गूंजने लगा था। इस मारक आघात के कुछ दिनों उपरान्त कांग्रेस कार्यसमिति ने सर्वसम्मति से कहा कि राष्ट्रपिता की याद में एक 'स्मारक कोष' की स्थापना की जाये। क्योंकि सबका मानना था कि उनके स्थूल स्मारक तो न केवल भारत में बल्कि दुनिया भर में न जाने कितने बनेंगे। किन्तु केवल इन स्थूल स्मारकों से न किसी को कोई फायदा होगा और न बापू की आत्मा को ही संतोष हो सकता है। उनका सच्चा स्मारक तो यही हो सकता है कि जिन आदर्शों के लिए गांधीजी जिए और मरे, उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयास किया जाये। इसीलिए कांग्रेस कार्यसमिति ने सुझाया कि 'जो स्मारक कोष स्थापित किया जाये, उससे अखिल भारतीय आधार पर रचनात्मक प्रवृतियों को चलाया जाए। इनमें वे सभी वृतियां होंगी जो गांधी जी को अपने जीवन में सर्वाधिक प्रिय रही और जिन्हें आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने भगीरथ प्रयास किया था। गांधीजी द्वारा शुरू की गयी रचनात्मक प्रवृतियों का उद्देश्य यही था कि भारत के जनसाधारण का, खास कर सात लाख देहातों में रहने वाले' दरिद्र नारायण का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और नैतिक विकास हो। स्मारक कोष

का इससे अधिक अच्छा उपयोग दूसरा नहीं हो सकता था, क्योंकि उन के द्वारा उनकी शिक्षाएं युग-युग तक मानव को प्रेरणा देती रहेंगी। तथापि गांधी जी के विचारों का विभिन्न भाषाओं में प्रकाशन और उनसे सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं का एक संग्रहालय चलाना भी आवश्यक है। क्योंकि कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा, जो गांधीजी की याद को हमेशा जीवित न रखना चाहेगा। उनका व्यक्तित्व ही ऐसा अप्रितम था, जो करोड़ों हृदयों पर अपनी अमिट निशानी छोड़ गया।

इसके बाद पश्चिम बंगाल के गवर्नर श्री सी. राजगोपालाचारी ने 'गांधी जी का सर्वोत्तम स्मारक' विषय पर अखिल भारतीय रेडियो पर भाषण देते हुए कहा, 'महात्मा गांधी जी की मृत्यु की दुर्घटना के धक्के ने भारत को जड़ से हिला दिया है और एकमत सबकी यह इच्छा है कि जिस हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए उन्होंने अपने प्राणों की बलि दी है, भारत में उसकी स्थापना हो। उनकी भस्मी पर यही एकमात्र उपयुक्त और संतोषजनक स्मारक है।' 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' एक छोटा सा वाक्य है, संक्षेप में जिसका अर्थ है कि हिन्दू और मुसलामानों में ही नहीं, प्रत्युत भारत में रहने वाले सभी धर्मों के अनुयाइयों हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, पारसी तथा अन्य के बीच एकता। राजनैतिक और सांस्कृतिक समस्यायों पर लोगों के पहले भी कुछ मत रहे हों, इस समय तो सभी श्रेणी के लोगों के मानस पर एक महान और आध्यात्मिक प्रतिक्रिया हुई है। यदि दिवंगत आत्मा के प्रति सम्मान की भावना मात्र हमारे विचार, शब्द और कार्य में क्रियात्मक रूप ले सकें तो मृत्यु से कोई विशेष अंतर्मन पड़ेगा और शरीर त्याग के बाद महात्मा जी की यह महानतम विजय होगी। यदि महात्मा जी की आत्मा हम सब में बस जाए तब हमें शोक क्यों करना चाहिए? उनका शरीर चला गया है, लेकिन उनकी आत्मा फिर भी हमारे हाथ रहेगी।' उन्होंने आगे कहा कि, 'एकता, सद्भावना, उदारता, प्रेम अथवा उसका और जो भी नाम दे, वही एक चीज थी, जिसके महात्मा जी प्यासे थे और जिसके लिए वे अपनी मृत्यु के अंतिम क्षण तक प्रार्थना करते रहे। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी राजनैतिक समझौते अथवा किन्ही संस्थाओं के उद्भुत होने अथवा विलीन होने से यह प्राप्त नहीं हो सकता। ऊपर की सफाई से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती और न ही आज्ञा अथवा दबाव से प्रेम, पारस्परिक आदर अथवा सम्मान पैदा किया जा सकता है। केवल विश्वास, उदारता और प्रेम द्वारा ही अविश्वास, धर्मान्धिता और घृणा को मिटाया जा सकता है।'

चूँकि हिंदी तिथियों के मुताबिक गांधीजी का जन्मदिन 19 सितम्बर को पड़ रहा था और अंगरेजी तारीख 2 अक्टूबर तय थी। इससे उनके देहावसान के उपरान्त 'गांधी जयन्ती' मनाने के लिए सभी को पूरा पखवाड़ा मिल गया, इसीलिए इन पंद्रह दिनों में उनके महान व्यक्तित्व के प्रति सारे जगत में श्रद्धांजलियाँ अर्पित की गयी। क्योंकि उन्होंने न केवल इस देश को, बल्कि सारे संसार को प्रकाश का नया मार्ग दिखाया था। 'गांधीजी जैसे महापुरुष को पाकर हम धन्य हुए, इसीलिए उनकी शिक्षाओं पर चलकर सारी दुनिया के आगे एक नया आदर्श प्रस्तुत करना है। वे अपने जन्मदिन को 'चरखा जयंती' नाम देना चाहते थे', जिसे याद करते हुए हमारे प्रथम राष्ट्रपति श्री राजेंद्र बाबू ने कहा, 'हम गांधी जी की शिक्षाओं को छोड़ते जा रहे हैं। इससे तो बढ़कर दुर्भाग्य की बात कोई दूसरी नहीं हो सकती। यदि हम स्वयं भटक गए

'हिन्दू-मुस्लिम एकता' एक छोटा सा वाक्य है, संक्षेप में जिसका अर्थ है कि हिन्दू और मुसलामानों में ही नहीं, प्रत्युत भारत में रहने वाले सभी धर्मों के अनुयाइयों हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, पारसी तथा अन्य के बीच एकता। राजनैतिक और सांस्कृतिक समस्यायों पर लोगों के पहले भी कुछ मत रहे हों, इस समय तो सभी श्रेणी के लोगों के मानस पर एक महान और आध्यात्मिक प्रतिक्रया हुई है। यदि दिवंगत आत्मा के प्रति सम्मान की भावना मात्र हमारे विचार, शब्द और कार्य में क्रियात्मक रूप ले सकें तो मृत्यु से कोई विशेष अंतर्मन पड़ेगा और शरीर त्याग के बाद महात्मा जी की...।

तो भला दूसरों को क्या मार्ग दिखा पाएंगे? अत: हम इस पखवाड़े में गांधीजी की शिक्षाओं के प्रति अपनी श्रद्धा को फिर से जीवित करें। राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए उन्होंने जो रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किया था, उस कार्यक्रम को पूरा करने में सभी हाथ बढ़ा सकते हैं। गांधीजी को इसकी चिंता न थी कि लोग उनकी जयन्ती मनाएं। वह तो लोकस्तुति नापसंद करते थे, किन्तु साथ ही वह व्यवहारिक भी कम न थे। उन्होंने लोगों की भावनाओं को रचनात्मक कामों की ओर मोड़ दिया। उन्होंने जयंती को चरखा प्रचार का साधन बना दिया। चरखा सर्वोदय की नयी समाज व्यवस्था का प्रतीक है और जो सत्य और अहिंसा के जरिये उस व्यवस्था को संभव बनाने की अभिलाषा रखते हैं, उन्हें चरखा और चरखे की विचारधारा का अधिक से अधिक प्रसार करना चाहिए। हरिजन सेवा, साम्प्रदायिक एकता आदि रचनात्मक कार्यक्रम के अन्य अंगों को भी आशा है देशवासी पुष्ट करेंगे। और इस प्रकार देश में सही अर्थों में गांधीजी की कल्पना के राम राज्य को निकट लाने में सहायक होंगे। यही हमारी सच्चे श्रद्धांजलि होगी।

बापू के सिद्धांतों और विचारों के उद्बोधन और क्रियान्वन के लिए लगातार कार्य करने वाले आचार्य भावे मार्च 1951 में राजघाट आये। वे लगभग 793 किलोमीटर की पदयात्रा करके दिल्ली आये थे और अपने 75 साथियों के साथ राजघाट पर ही ठहरे। हालांकि प्रधानमंत्री नेहरू चाहते थे कि आचार्य और उनके साथी किसी सरकारी 'गेस्ट हाउस' में रुकें। लेकिन भूदान यज्ञ का संकल्प लेकर निकले आचार्य विनोबा भावे नहीं माने, इसीलिए उनके पहुँचने से पहले...।

यद्यपि अपने-अपने मतानुसार सब नेताओं ने बापू 'स्मारक कोष' बनाने के साथ ही उनकी स्मृतियों और स्मारकों को संरक्षित रखने की बात कही थी। किन्तु आचार्य विनोबा भावे के उद्‌बोधन ने कांग्रेस कार्यसमिति को राष्ट्रपिता की प्रथम निधन -जयन्ती से पूर्व आत्ममंथन के लिए प्रेरित किया। अंतत: कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव में आदेश दिया कि जिस सर्वोदय के आदर्श के लिए उन्होंने अपने प्राण न्योछावर किये, उसकी पूर्ति में योग देने का पवित्र संकल्प करें तथा उनकी शहादत के दिन 'गांधीजी के उस सन्देश की ओर प्रवृत होना चाहिए, जिसमें उन्होंने सत्य और अहिंसा द्वारा प्राणी - प्राणी में एकता और सद्‌भावना उत्पन्न करने का निर्देश किया था।'

बापू के सिद्धांतों और विचारों के उद्‌बोधन और क्रियान्वन के लिए लगातार कार्य करने वाले आचार्य भावे मार्च 1951 में राजघाट आये। वे लगभग 793 किलोमीटर की पदयात्रा करके दिल्ली आये थे और अपने 75 साथियों के साथ राजघाट पर ही ठहरे। हालांकि प्रधानमंत्री नेहरू चाहते थे कि आचार्य और उनके साथी किसी सरकारी 'गेस्ट हाउस' में रुकें। लेकिन भूदान यज्ञ का संकल्प लेकर निकले आचार्य विनोबा भावे नहीं माने, इसीलिए उनके पहुँचने से पहले ही राजघाट पर झोपड़ियां बना दी गई। तब तक राजघाट बंजर स्थान जैसा था और स्मारक के तौर पर पहचाना जाता था। यद्यपि अंत्येष्टि स्थल पर सभी दर्शन को जाते थे और वहां समाधि बनाने के लिए सन 1950 से बातचीत चल रही थी। किन्तु इसके उपरान्त पंडित नेहरू ने स्वयं संज्ञान लिया और सरकार राजघाट को विकसित करने पर गंभीर हो गई एवं अमेरिका के महान आर्किटेक्ट फ्रैंक लायड राइट से संपर्क किया गया, क्योंकि कांग्रेस उनसे समाधि स्थल की रूपरेखा बनवाना चाहती थी। किन्तु संसद में विपक्ष द्वारा हंगामा किये जाने के बाद, इस प्रस्ताव को वापिस ले लिया गया। विपक्ष की मांग थी कि बापू की समाधि का डिजाइन कोई भारत का ही वास्तुकार तैयार करे।

परन्तु उनके स्थायी स्मारक का प्रस्ताव काफी समय तक कोई ठोस रूप नहीं प्राप्त कर सका, यह प्रस्ताव लम्बे समय तक लंबित पड़ा रहा। तब देश के चोटी के डिजाइनरों से संपर्क किया गया, उनके कामों और राजघाट के संभावित डिजाइनों का गहराई से अध्ययन किया गया। पंडित नेहरू के निर्देश पर केंद्रीय लोक निर्माण विभाग के

चीफ आर्किटेक्ट हबीब रहमान और चीफ इंजीनियर टी. एस. वेदगिरि ने राजघाट डिजाइन सम्बंधित 'प्रोजेक्ट कॉस्ट' पर भी नजर बनाये रखी। इनको मिले विभिन्न डिजाइनों में राजघाट का एक डिजाइन दक्षिण भारतीय मंदिर की वास्तुकला से मिलता-जुलता था एवं एक-दो में बापू चरखे या चरखे के बगैर बैठे थे। आखिरकार अमेरिका शिक्षित भूपा जी के डिजाइन पर मुहर लगी और सन 1956 में यह महत्वपूर्ण दायित्व उन्हें सौंपा गया। दरअसल उनके मन में महात्मा गांधी की आधी धोती वाली छवि गहरे अंकित थी, जो उनमें एक मजबूत नेता और कुशल नेतृत्व की छवि गढ़ती थी। इसीलिए भूपा जी बापू की सादगी के प्रति निष्ठा को ध्यान रखते हुए, यही सादगी राजघाट की छवि में चाहते थे। इसीलिए उन्होंने राजघाट परिसर के डिजाइन को 'सीधा-सरल' रखा, जिसमें काले संगमरमर से बना एक चबूतरा है। गांधीजी की 'सादा जीवन उच्च विचार' की नीति को ध्यान में रखते हुए, वानुजी भूपा द्वारा तैयार डिजाइन में भी गरिमामय सादगी थी। उन्होंने राजघाट परिसर के बीचोबीच एक वर्गाकार जगह में समाधि बनाई और उस पर बापू के बोले अंतिम शब्द 'हे राम' लिखवाये। भूपा ने समाधि के चारों तरफ बड़ा सा 'स्पेस' हरियाली के लिए छोड़ा, जहां बगीचे में सुन्दर पेड़-पौधे लगाए गए एवं समाधि पर ज्योति को सदैव प्रज्ज्वलित रखा, जिसका सन्देश यह है कि बापू की शिक्षाएं संसार के लिए हमेशा प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं। स्मारक का भूनिर्माण मिस्टर एलिक पारसी-लैंकस्टेर द्वारा किया गया, जो भारत सरकार के तहत बागवानी संचालन के अधीक्षक के पद पर आसीन अंतिम ब्रिटिश नागरिक थे।

अमेरिका में अफ्रीकी मूल के नागरिकों के हक में लड़ने वाले मार्टिन लूथर किंग यहाँ आने वाले विश्व के पहले नेता थे, जो 11 फरवरी 1959 को राजघाट आये। यह इतिहास के सबसे प्रभावशाली नेताओं को भी 'पीस मेन' को श्रद्धांजलि देने के लिए विदेशों से आकर्षित करता है। जहाँ दुनिया भर के गणमान्य लोगों ने पेड़ लगाए, जिनमें क्वीन एलिजाबेथ, वियतनाम के बड़े नेता हो-ची-मिन आदि शामिल हैं। पिछले वर्ष जी-20 समिट के सभी विदेशी मेहमानों ने महात्मा गांधी की समाधि पर श्रद्धांजलि अर्पित की। वास्तव में 'राजघाट' भारत की स्वतंत्रता की यात्रा का एक गहरा प्रतीक है और महात्मा गांधी के शाश्वत मूल्यों का प्रतिबिम्ब है। वैसे 'राजघाट' शब्द मूल रूप से पुरानी दिल्ली के चारदीवारी वाले शहर में एक द्वार को संदर्भित करता था, जो यमुना नदी के तट पर खुलता था। किन्तु महात्मा गांधी के अंतिम संस्कार के बाद उनके जीवन का सम्मान करने वालों के लिए यह तीर्थ स्थल में बदल गया। तकरीबन 5.1 एकड़ में फैला राजघाट आज सत्य और अहिंसा जैसे भारतीय मूल्यों की अखंड ज्योत है, जो सदैव प्रज्ज्वलित रहती है। यह एक ऐसा स्मारक है, जो युवा छात्र -छात्राओं के लिए प्रेरणा स्रोत बना है। यमुना नदी के तट पर स्थित राजघाट न केवल एक स्मारक है, बल्कि शान्ति और चिंतन का एक अरण्य है। जिसके निकट ही राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय है, जिसमें गांधी सम्बंधित पुस्तकें, स्मृति चिन्ह और कलाकृतियां संरक्षित हैं। अंततः भारत में बापू के अनुयायियों ने उनके मूल्यों और आदर्शों पर चलकर एक ऐसे राष्ट्र की नींव रखी, जिससे अनेकता में एकता और 'सर्वोदय' का सिद्धांत मजबूत हुआ। परन्तु कुछ लोगों को छोड़कर हमारे देश में ज्यादातर लोग उस तरह का नियंत्रित -नियमित त्यागमय जीवन नहीं जी पाए, जो बापू की अनुशासनबद्ध -आध्यात्मिक जीवन शैली पर आधारित था। जबकि वैश्विक स्तर पर मार्टिन लूथर किंग और नेल्सन मंडेला जैसे नेता उनकी विचारधारा को अपनाकर देश- दुनिया में लोकप्रिय हो गए।

1 – गांधी स्मारक कोष

2 – सर्वोत्तम स्मारक

3 – जयन्ती पखवाड़ा

4 – बापू की याद

संपर्क:

मो. 8860022613

सामाजिक मीडिया से निकटता बनाम सामाजिक सरोकार से दूरी

अभिषेक बाजपेयी

सोशल मीडिया का विकास तेजी से हो रहा है। इस नवीनतम तकनीक से हमारे बच्चों को बचाना और छिपाना व्यावहारिक रूप से मुश्किल है। सर्वेक्षण कहता है कि 73% भारतीय बच्चे सेल फोन उपयोगकर्ता हैं। हर साल गेमिंग और इंटरनेट के आदी बच्चों का प्रतिशत बढ़ रहा है। 2017 में भारत में स्मार्टफोन उपयोगकर्ताओं की वृद्धि की वार्षिक दर चीन से अधिक है। प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया का बच्चों पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़ता है। यह प्रौद्योगिकी और मीडिया के लाभों और नकारात्मक प्रभावों को समझने का जरुरी समय है। 21 वीं सदी को हम यदि मीडिया की सदी कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। शिक्षा के क्षेत्र में नये-नये आयामों द्वारा शिक्षा जगत में महत्वपूर्ण उपलब्धियों में मीडिया की लोकप्रियता सर्वत्र छायी है। मीडिया ने न केवल वर्तमान में अपितु स्वतन्त्रता संग्राम में भी अपनी भूमिका निभायी है। समाज में कब, कहाँ, क्यों, कैसे, क्या हो रहा है। इन सबको जानने का एकमात्र माध्यम मीडिया है। जो समाचार द्वारा लोगों की जिज्ञासाओं को पूर्ण करता है। तकनीकी विकास जहाँ हमें इतना कुछ दे रहा है वहीं बहुत कुछ छीन भी रहा है। यह हमारे ऊपर है कि हम किस प्रकार इससे लाभ ज्यादा और हानि कम उठायें।

आधुनिक युग में सोशल मीडिया का समाज पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ रहा है। लेकिन युवा पीढ़ी सबसे अधिक प्रभावित हो रही है।

मीडिया का महत्व

मीडिया एक ऐसा जरिया है जिसके द्वारा देश-विदेश की जानकारी, डाटा को एक साथ लाखों लोगों तक पहुँचाया जाता है। समय के साथ-साथ इसमें बदलाव आया है। पहले प्रिंट मीडिया फिर मास मीडिया और अब सोशल मीडिया के द्वारा लोग अपनी बात सबके सामने रखते हैं। माता-पिता की एक प्रमुख चिंता यह है कि इंटरनेट बच्चों के सामाजिक कौशल को प्रभावित करता है। इसको देखने के दो तरीके हैं। इंटरनेट आलोचक कहेंगे कि बच्चे सामाजिक गतिविधियों में कम समय व्यतीत करते हैं या परिवार और दोस्तों के साथ संवाद करते हैं। दूसरी ओर इंटरनेट

सोशल मीडिया का विकास तेजी से हो रहा है। इस नवीनतम तकनीक से हमारे बच्चों को बचाना और छिपाना व्यावहारिक रूप से मुश्किल है। सर्वेक्षण कहता है कि 73% भारतीय बच्चे सेल फोन उपयोगकर्ता हैं। हर साल गेमिंग और इंटरनेट के आदी बच्चों का प्रतिशत बढ़ रहा है। 2017 में भारत में स्मार्टफोन उपयोगकर्ताओं की वृद्धि की वार्षिक दर चीन से अधिक है। प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया का बच्चों पर सकारात्मक...।

उन्हें नए दोस्त बनाने में सक्षम बनाता है जो दूर स्थानों पर स्थित हैं।

कई सोशल मीडिया साइटें कई विज्ञापन प्रदर्शित करती हैं जैसे बैनर विज्ञापन, व्यवहार विज्ञापन, जो अपने वेब ब्राउजिंग व्यवहार और जनसांख्यिकीय विज्ञापनों के आधार पर लोगों को लक्षित करते हैं जो एक विशिष्ट कारक जैसे आयु, लिंग, शिक्षा, मार्शल के आधार पर लोगों को लक्षित करते हैं ऐसी स्थिति जो न केवल विद्यार्थियों और किशोरों की मनोस्थिति को प्रभावित करती है, बल्कि उनके विचार को भी सामान्य से असामान्य कर देती है। माता-पिता के लिए व्यवहार संबंधी विज्ञापनों से अवगत होना भी महत्वपूर्ण है क्योंकि वे सोशल मीडिया साइटों पर आम हैं और किसी साइट का उपयोग करने वाले व्यक्ति पर जानकारी इकट्ठा करके संचालित करते हैं। ऑनलाइन दुनिया के बारे में बच्चों और किशोरों को शिक्षित करने और इसके खतरों का प्रबंधन और बचने के लिए एहतियात बरतना चाहिए।

मीडिया के उपयोग के फायदे

असीमित सूचना का संसाधन बच्चों द्वारा सोशल मीडिया का उपयोग करने के फायदों में पहला फायदा है कि इस प्लेटफॉर्म के जरिए उन्हें असीमित सूचना का भंडार प्राप्त होता है। इसके माध्यम से बच्चे पढ़ाई के साथसाथ अन्य गतिविधियों के बारे में भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। सोशल मीडिया का एक फायदा यह भी है कि यह बच्चों को खुल कर बोलने का मौका देता है। जिससे बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ सकता है। बच्चे इस प्लेटफॉर्म के माध्यम से खुलकर अपनी बातों को रख सकते हैं। सोशल मीडिया बच्चों के लिए एक मंच प्रदान करता है। जहां बच्चे अपनी रुचि के अनुसार नई नई चीजों को सीख सकते हैं। जागरुकता फैलाने में सहायक सोशल मीडिया बच्चों में जागरूकता बढ़ाने में मदद कर सकता है। जिससे वे समाज में सकारात्मक परिवर्तन को बढ़ावा दे सकेंगे।

सोशल मीडिया एक खुला मंच है। जहां हर चीज के बारे में जानकारी मिल सकती है। इसके माध्यम से बच्चे देश विदेश में होने वाली घटनाओं से भी रूबरू हो सकते हैं। उनका ज्ञान बढ़ सकता है।

सोशल मीडिया के सही इस्तेमाल से बच्चों की कम्युनिकेशन स्किल्स बेहतर हो सकती है। यूट्यूब के वीडियो के माध्यम से बच्चे बोलने का तरीका सीखें (हिंदी और इंग्लिश) सकते हैं। इससे बच्चे खुद को प्रेरित कर सकते हैं।

प्रतिभा दिखाने का मौका सोशल मीडिया एक खुला मंच है। यहां बच्चे अपनी रुचि के हिसाब से अपने टैलेंट को दिखा सकते हैं।

बच्चों पर सोशल मीडिया के दुष्प्रभाव

अगर बच्चों को सोशल मीडिया के भरोसे छोड़ दिया जाए तो इसके नकारात्मक प्रभाव भी सामने आ सकते हैं। सोशल मीडिया का अधिक उपयोग बच्चों की मानसिक स्थिति पर बुरा प्रभाव डाल सकता है। इस पर हुए एक शोध से जानकारी मिलती है कि स्मार्टफोन के अधिक उपयोग से बच्चों में मानसिक परेशानी की भी बढ़ोतरी हो सकती है। उनके संज्ञानात्मक नियंत्रण पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

असीमित सूचना का संसाधन बच्चों द्वारा सोशल मीडिया का उपयोग करने के फायदों में पहला फायदा है कि इस प्लेटफॉर्म के जरिए उन्हें असीमित सूचना का भंडार प्राप्त होता है। इसके माध्यम से बच्चे पढ़ाई के साथसाथ अन्य गतिविधियों के बारे में भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। सोशल मीडिया का एक फायदा यह भी है कि यह बच्चों को खुल कर बोलने का मौका देता है। जिससे बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ सकता है। बच्चे इस प्लेटफॉर्म के माध्यम से खुलकर...।

नींद की कमी

सोशल मीडिया के अधिक उपयोग से बच्चों की नींद में भी कमी देखी गई है। दरअसल जो बच्चे देर रात कर सोशल मीडिया का प्रयोग करते हैं, और देरी से सोते हैं और फिर सुबह उन्हें स्कूल जाने के लिए जल्दी उठना पड़ता है इससे उनकी नींद पूरी नहीं हो पाती है।

अवसाद का कारण

सोशल मीडिया बच्चों में अवसाद का भी कारण बन सकता है। इस बात की पुष्टि एक शोध में होती है। बताया जाता है कि जो बच्चे रात में अधिक समय तक फोन का इस्तेमाल करते हैं, उनकी नींद प्रभावित होती है और वो अवसाद का शिकार हो सकते हैं।

चिंता का कारण एनसीबीआई National Center for Biotechnology Information की वेबसाइट पर प्रकाशित शोध के मुताबिक सोशल मीडिया का अधिक उपयोग बच्चों में चिंता का भी कारण बन सकता है।

पढ़ाई लिखाई पर प्रभाव

सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभाव में उनकी पढ़ाई–बारे में शोध बताते हैं कि स्मार्टफोन के अधिक उपयोग से प्रणाली के साथसाथ स्कूली परफॉर्मेंस भी प्रभावित होती है।

हिंसक प्रवृत्ति में बढ़ोतरी

सोशल मीडिया बच्चों में हिंसा को भी बढ़ावा दे सकता है। अगर बच्चे फेसबुक या फिर यूट्यूब पर हिंसक चीजें देखेंगे तो उनके अंदर भी वैसी आदतों का विकास हो सकता है। इससे वो घर में भी अपने परिवार वालों के साथ वैसा ही व्यवहार कर सकते हैं।

एकाग्रता में कमी

एक बार भी अगर बच्चों को सोशल मीडिया की आदत लग गई तो इसका असर उनकी एकाग्रता पर भी पड़ सकता है।

बच्चों में सोशल मीडिया के सही उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिए और इसके नकारात्मक प्रभावों को सीमित करने के लिए मातापिता को कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए।

समय सीमा निर्धारित करें

सोशल मीडिया पर समय बिताने के लिए बच्चों की समय सीमा को निर्धारित करें। साथ उन्हें सोशल मीडिया का उपयोग करने के लिए ऐसा समय दें, जिससे उनकी पढ़ाई, नींद, भोजन जैसी जरूरी चीजें बाधित न हो।

सोशल अकाउंट्स की निगरानी करें

अगर बड़े बच्चे का फेसबुक जैसे सोशल मीडिया प्लेटफार्म पर अकाउंट्स हैं, तो नियमित रूप से उन अकाउंट्स को चेक करते रहें। माता पिता चाहें, तो सप्ताह में एक बार ऐसा कर सकते हैं। इससे बच्चों की गतिविधियों पर नजर बनी रहेगी। वहीं छोटे बच्चों को सोशल मीडिया अकाउंट्स बनाने की अनुमति न दें।

बच्चों को बताएं क्या गलत है

सोशल मीडिया पर सही और गलत दोनों तरह की चीजों का प्रसार होता है। ऐसे में इसके उपयोग से पहले बच्चों को पता होना चाहिए कि सही और गलत में क्या अंतर है। खासकर गलत आदतों के बारे उन्हें जानकारी होनी चाहिए। इसलिए सोशल मीडिया की गलत आदतों के बारे में बच्चों को जरूर बताएं ताकि वह इसे दूरी बनाकर रखें।

संपर्क:
मो. 8102164280

माधव कौशिक की कविताएं

क्लाईमेट चेंज

आओ इस जलते जंगल से
कुछ चिड़िया
कुछ पेड़ बचा लें

छोटी से छोटी तितली के
पर झुलसे हैं
भाग रही है जान बचाकर
चुस्त गिलहरी

मोरों की चित्तचोर निगाहें
धुएं की कालिख में डूबी

हिस्त्र पशु भी मिमयाते हैं
आग की लपटें
आसमान को छू लेती हैं
तेज हवा के झोंके
घी का काम कर रहे

दावानल का रुप भयंकर
देख फरिश्ते भी रोते हैं
कैसे मानव नादानी में
हरदम चादर तान सोते हैं

इससे पहले सारी सृष्टि
राख में बदले
आओ थोड़ी सी चिड़ियाएं
थोड़े से तो पेड़ बचा लें।

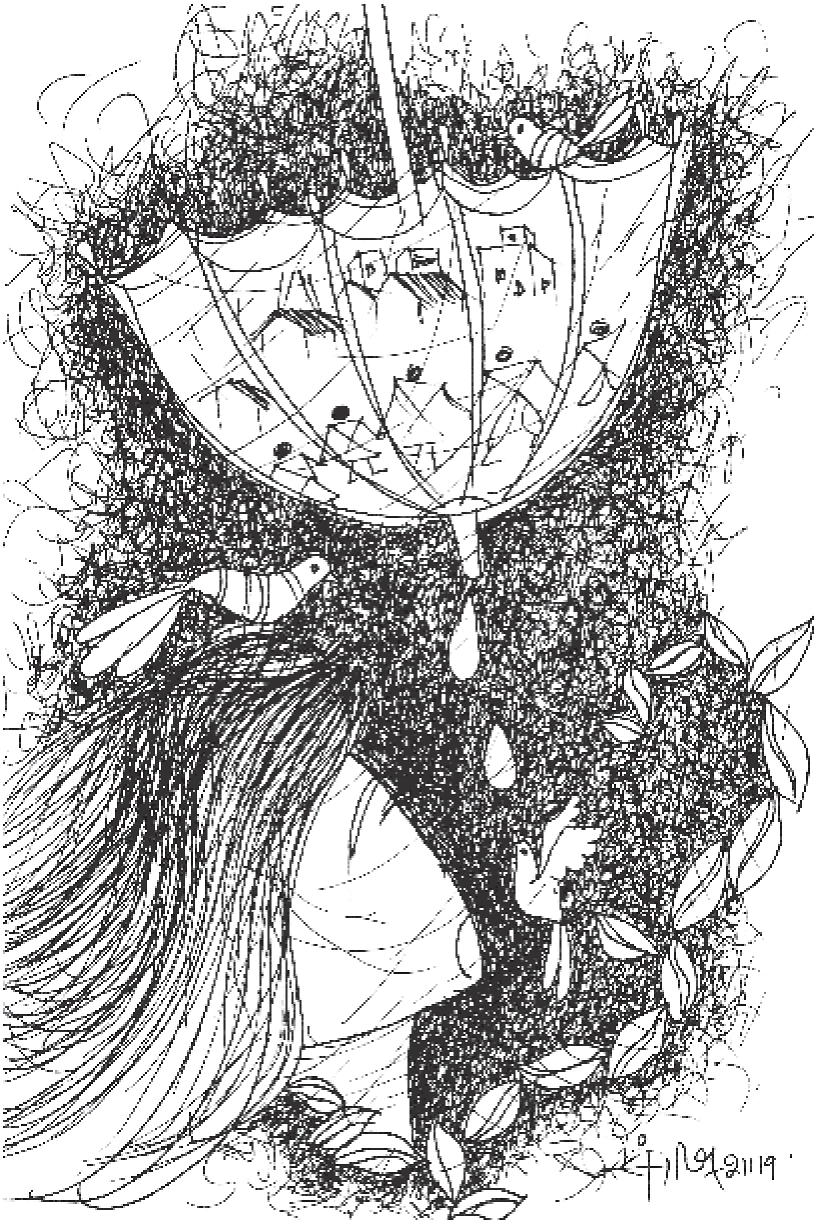

अप्रतिम

और सभी चेहरों में
उसका चेहरा
अलग–थलग दिखता है

दुनिया भर के सदमे सह कर
उसकी आखें ठहर गई हैं
जीवन का सारा असमंजस
बाहर निकला है झुर्रियों में

कमर झुक गई
बोझा सर का रोज उठाते

सधे हुये कदमों पर लम्बी
उम्र भी भारी पड़ जाती है
स्वप्न देने वाली आखें
पत्थर बनकर गड़ जाती हैं

सभी सुखी लोगों के चेहरे
बिल्कुल एक तरह के निकले
लेकिन कड़ी धूप में तपना
किसी तपस्वी सा होता है

इसीलिए इतने चेहरों में उसका चेहरा
बिल्कुल अलग–थलग दिखता है।

शब्द की सत्ता

कुछ शब्दों में
सारी दुनिया सिमट गई

छोटी से छोटी बूंदों में
समा गया है एक समुन्दर
पूरी सृष्टि झांक रही है
जरा गौर से देखो कंकर
सिर्फ धूप के इक धागे से
पूरी पृथ्वी लिपट गई।

चलते-चलते पैर ठिठक कर
ठहर गये
कुछ अनजाने चित्र समय के
उभर गये

जैसे नींद किसी बालक की
उचट गई।
कुछ शब्दों में
सारी दुनिया सिमट गई।

परिवर्तन

सच को झूठ बना देना
अब कितना ज्यादा सरल हो गया

पानी को पारा बतला कर
हमें डराया
प्यास लगी तो आग पिलाई
अपने घास-फूस के घर को
स्वयं दिखलाई दीयासलाई

लेकिन अचरज हुआ हमें तब
पत्थर पिघला तरल हो गया।

विश्वासों के खैरख्वाह भी
संदेहों में गर्क हो गये
धुंधली परछाई के कारण
सब के चेहरे फर्क हो गये
ऐसी हवा चली जहरीली
सारा अमृत गरल हो गया।

मूर्तिकार

मुझे पता है
हर पत्थर के सीने में
इक दिल होता है

इस दिल में होती है
किसी महामानव की छवि निराली
या कोई मदमस्त सुन्दरी स्वर्ग लोक की
या कोई युनानी योद्धा
वैदिक युग का ऋषि-तपस्वी

यानी हर पत्थर में
कुछ ना कुछ तो
अवश्य छिपा रहता है

मैं तो बस आवाज लगा कर
छैनी और हथोड़े से
उस सुप्त-देव को निद्रा से
बाहर लाता हूँ

दुनिया चाहे कुछ भी बोले
पत्थर भी हंसता है होले !!

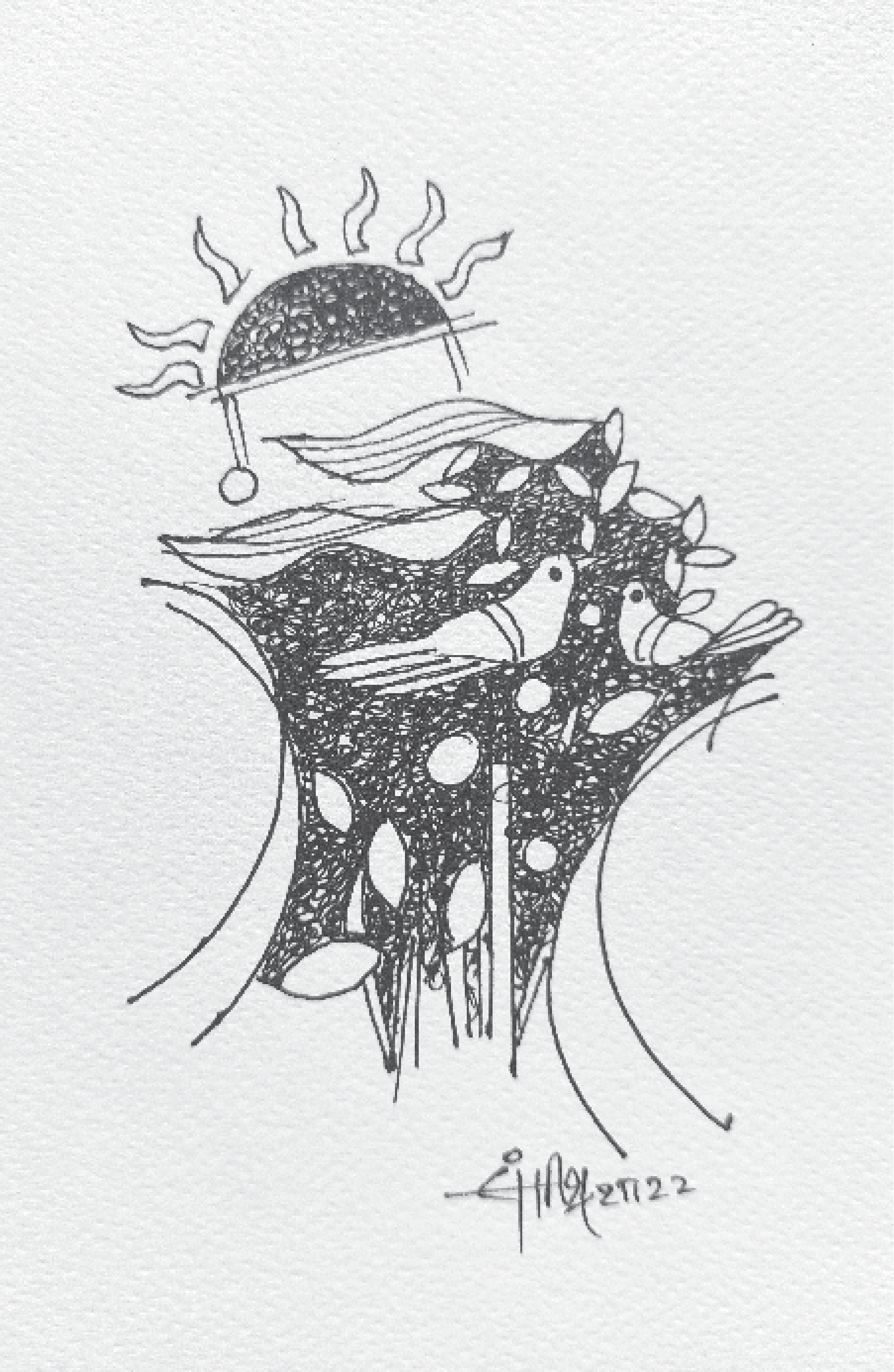

घटना-क्रम

आवाजों के घेरे में
दम घुटता है खामोशी का

चीख-पुकार गली-कूंचों की
शोर-शराबा बाजारों का

हुल्लड़बाजी चौराहों पर
नुक्कड़ पर पथराव निरन्तर

लाठी चार्ज हुआ बच्चों पर
महिलाओं पर वाटर-केनन

भगदड़ ने बूढ़ों को रौंदा
बुलडोजर ने बस्ती ढाई

राजघाट पर अनशन करने
काफी सारे दागी आये

लालकिले की प्राचीरों पर
सभी कबूतर गुमसुम बैठे

लोकतंत्र भी दे रहा है
दृश्य निराले
कहने को जब भी उठता है
पड़ जाते हैं मुँह पर ताले।

(कवि साहित्य अकादेमी के अध्यक्ष हैं)

फोटो में गांधी

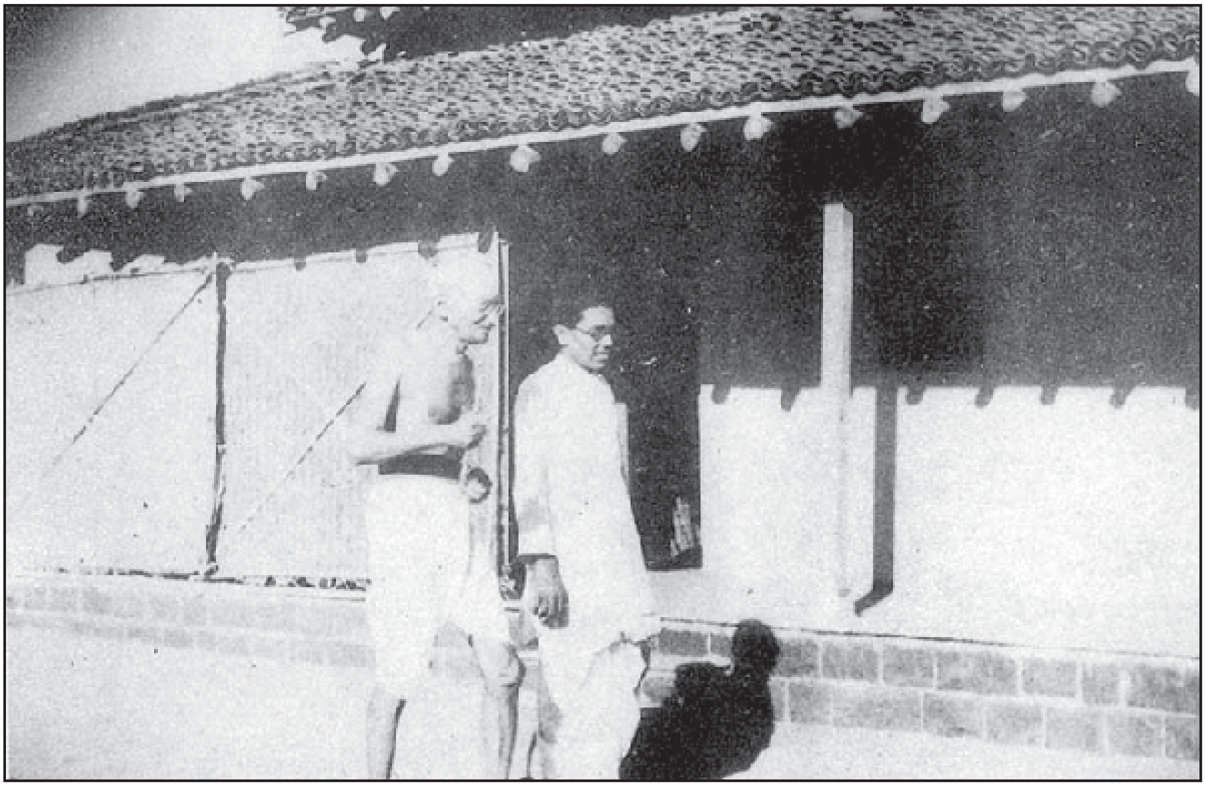

महादेवी वर्मा की कविताएं

कहाँ रहेगी चिड़िया?

कहाँ रहेगी चिड़िया?
आंधी आई जोर-शोर से,
डाली टूटी है झकोर से,
उड़ा घोंसला बेचारी का,
किससे अपनी बात कहेगी?
अब यह चिड़िया कहाँ रहेगी?

घर में पेड़ कहाँ से लाएँ?
कैसे यह घोंसला बनाएँ?
कैसे फूटे अंडे जोड़ें?
किससे यह सब बात कहेगी,
अब यह चिड़िया कहाँ रहेगी?

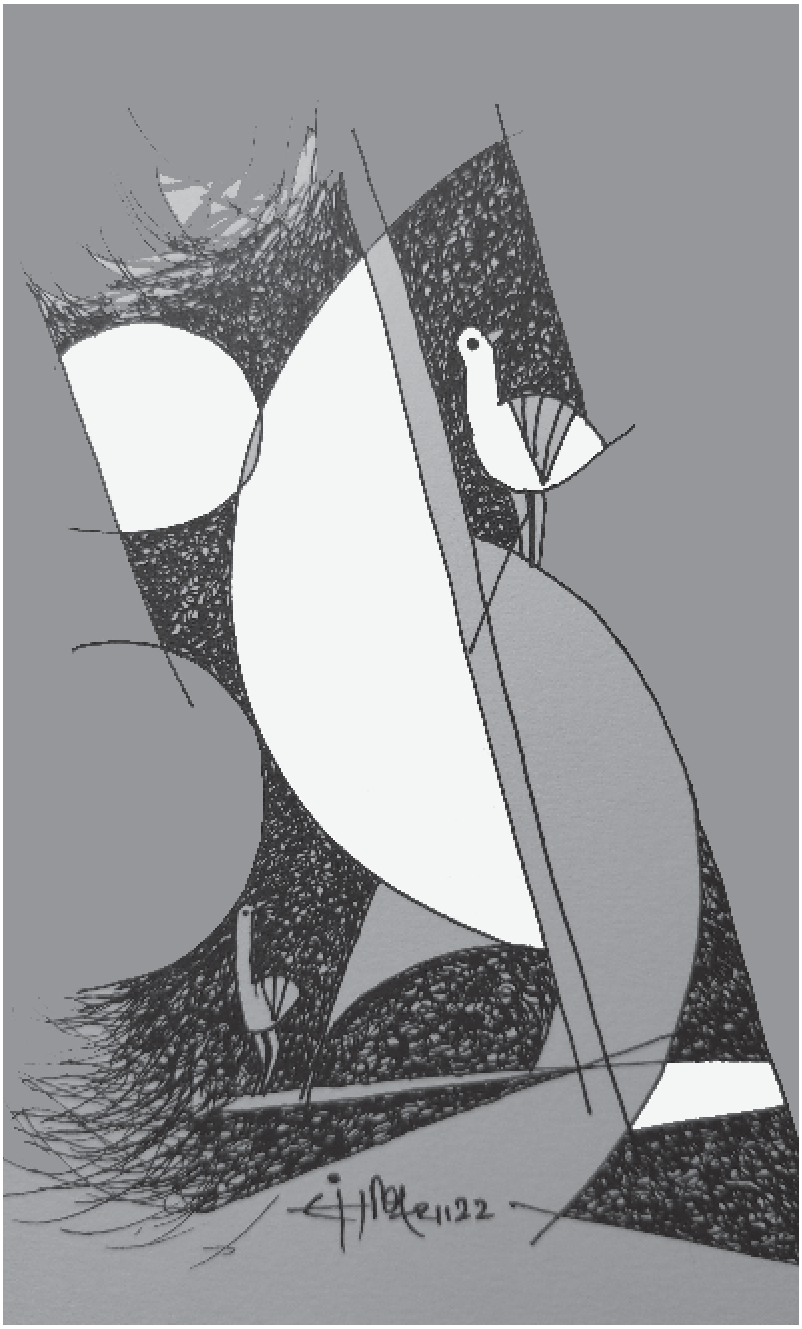

कोयल

डाल हिलाकर आम बुलाता
तब कोयल आती है।

नहीं चाहिए इसको तबला,
नहीं चाहिए हारमोनियम,
छिप-छिपकर पत्तों में यह तो
गीत नया गाती है!

चिक्-चिक् मत करना रे निक्की,
भौंक न रोजी रानी,
गाता एक, सुना करते हैं
सब तो उसकी बानी।

आम लगेंगे इसीलिए यह
गाती मंगल गाना,
आम मिलेंगे सबको, इसको
नहीं एक भी खाना।

सबके सुख के लिए बेचारी
उड़-उड़कर आती है,
आम बुलाता है, तब कोयल
काम छोड़ आती है।

आओ प्यारे तारो आओ

आओ, प्यारे तारो आओ
तुम्हें झुलाऊँगी झूले में,
तुम्हें सुलाऊँगी फूलों में,
तुम जुगनू से उड़कर आओ,
मेरे आँगन को चमकाओ।

तितली से

मेह बरसने वाला है
मेरी खिड़की में आ जा तितली।

बाहर जब पर होंगे गीले,
धुल जाएँगे रंग सजीले,
झड़ जाएगा फूल, न तुझको
बचा सकेगा छोटी तितली,
खिड़की में तू आ जा तितली!

नन्हे तुझे पकड़ पाएगा,
डिब्बी में रख ले जाएगा,
फिर किताब में चिपकाएगा
मर जाएगी तब तू तितली,
खिड़की में तू छिप जा तितली।

बंदूक वाली पिचकारी

आकाश अपने मम्मी पापा की इकलौता संतान था। वह कक्षा छह में पढ़ता था। वह इकलौता पुत्र होने के नाते बहुत जिद्दी स्वभाव का था। वह जिस चीज की मांग कर देता उसे वह लेकर ही रहता था। उसके जिद्द से उसके मम्मी पापा बहुत परेशान रहते थे।

एक रोज आकाश ने अपने मम्मी से कहा मम्मी मम्मी इस साल तो मैं होली पर बंदूक वाली पिचकारी लूंगा। तुमको हर हाल में हमें बंदूक वाली पिचकारी दिलवानी ही पड़ेगी। अगर तुमने हमें बंदूक वाली पिचकारी हमें नहीं दिलवाई तो मैं इस साल होली भी नहीं खेलूंगा।

आकाश की बात सुनकर उसकी मम्मी बोली तुम दिन प्रतिदिन बहुत जिद्दी बनते जा रहे हो। मैं तो तुम्हारी जिद्द के आगे तंग आ चुकी हूं।

मम्मी की बात सुनकर आकाश बोला मम्मी तुम मुझे पिचकारी मत दिलवाओ पर मुझपर झूठा इल्जाम मत लगाओ। आखिर बच्चे अपनी पसंद की चीज की मांग अपने मम्मी पापा से ही तो करेंगे। इसमें जिद्द की बात कहां से आ गई?

बस कर आकाश मैं तुम्हारी बातें सुनकर बहुत तंग आ चुकी हूं। होली पर तुमको बंदूक वाली पिचकारी मिल ही जाएगी ।

'मम्मी की बात सुनकर आकाश खुशी से हंसने लगा।'

होली के एक दिन पहले आकाश की मम्मी बोली आकाश चलो बाजार आज तुमको बंदूक वाली पिचकारी दिलवादूं। आकाश अपनी मम्मी के साथ बाजार चल दिया।

उसकी मम्मी आकाश को लेकर एक पिचकारी की दूकान पर पहुंचकर दुकानदार से बोली भाई साहब आप के पास बंदूक वाली पिचकारी हो तो हमारे बेटे आकाश को दे दीजिए।

दुकानदार ने तुरंत चार पांच तरह की बंदूक वाली पिचकारी दुकान से निकालकर आकाश के सामने रखकर बोला जो पसंद हो वह ले लीजिए।

बद्री प्रसाद वर्मा अनजान

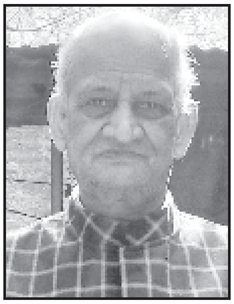

आकाश एक पिचकारी पसंद कर के बोला इसकी कीमत क्या होगी?

'पांच सौ रूपया है!'

तभी मम्मी बोल पड़ी आकाश बेटे तुम थोड़ी सस्ती पिचकारी लेलो।

'नहीं मम्मी हमें यही पिचकारी चाहिए।'

मम्मी अपने पर्स से पांच सौ रुपया निकालकर दुकानदार को देकर आगे चली गई।

आकाश आज बंदूक वाली पिचकारी पा कर मन ही मन सोचने लगा होली के दिन सबको रंग से खूब नहलाऊंगा और बंदूक वाली पिचकारी से जी भर रंग बरसाऊंगा।

पिचकारी लेकर आकाश खुशी खुशी अपनी मम्मी के साथ घर की ओर चल दिया।

संपर्कः

गल्ला मंडी गोलाबाजार 273408
गोरखपुर उ. प्र.
मो. 6394878596

गांधी क्विज-11

प्रश्न 1 निम्नलिखित में से किस नाटक का गांधीजी पर गहरा प्रभाव पड़ा था?

उत्तर– क. हरिश्चंद्र
ख. मनोज कुमार
ग. शिव जी
घ. श्रीराम

प्रश्न 2. अपने लंदन प्रवास के दौरान गांधीजी मुख्य रूप से क्या बन गए थे?

उत्तर– क. सुधारक
ख. पुरोहित
ग. शाकाहारी
घ. गायक

प्रश्न 3 गांधीजी के सबसे बड़े पुत्र का क्या नाम था ?

उत्तर– क. हरिलाल
ख. रामदास
ग. देवदास
घ. कनुदास

प्रश्न 4 गांधीजी की बहन का क्या नाम था?

उत्तर– क. गंगाबेन
ख. रलीयत बेन
ग. मीराबेन
घ. दानीबेन

प्रश्न 5 गांधीजी के निजी सचिव कौन थे?

उत्तर– क. विनोबा भावे
ख. जे बी कृपलानी
ग. काका कालेलकर
घ. महादेव देसाई

प्रश्न 6 दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी ने अपनी कानूनी सेवाएं जिस कंपनी में दी थी, उसके प्रमुख कौन थे?

उत्तर– क. दादा अब्दुल्ला
ख. सरोजिनी
ग. पोलक
घ. हेनरी

प्रश्न 7 किस स्थान के मजिस्ट्रेट ने गांधी को कोर्ट में पगड़ी उतारने को कहा था?

उत्तर– क. प्रिटोरिया
ख. डरबन
ग. जोहानिसबर्ग
घ. मेरितजबर्ग

प्रश्न 8 गांधीजी की पसंदीदा पुस्तक 'अनटु दिस लास्ट' दक्षिण अफ्रीका में उन्हें किसने भेंट की?

उत्तर– क. वेस्ट
ख. पारसी रुस्तमजी
ग. पोलक
घ. मनसुख लाल

प्रश्न 9 दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी की महिला सचिव कौन थी?

उत्तर– क. सोनजा श्लेसिन
ख. सरोजिनी नायडू
ग. सुशील नैयर
घ. प्रभावती

प्रश्न 10 सन् 1904 में दक्षिण अफ्रीका में प्लेग फैलने पर गांधीजी ने कहाँ पर अस्पताल आरंभ किया?

उत्तर– क. डरबन
ख. जोहानिसबर्ग
ग. प्रिटोरिया
घ. केपटाउन

नोटः आप गांधी क्विज के उत्तर antimjangsds@gmail.com पर भेज सकते हैं। प्रथम विजेता को उपहार स्वरूप गांधी साहित्य दिया जायेगा।

गतिविधियाँ

भजन संध्या और गांधी थाली का शुभारंभ

गांधीजी के राजनीतिक गुरु गोपाल कृष्ण गोखले की पुण्यतिथि के अवसर पर गांधी दर्शन में 19 फरवरी से दैनिक भजन संध्या और गांधी थाली का शुभारंभ किया गया। उल्लेखनीय है कि महात्मा गांधी प्रतिदिन गांधी स्मृति में संध्या प्रार्थना किया करते थे। उन्हीं के पदचिह्नों पर चलते हुए, अब प्रतिदिन सायं 5 बजे गांधी दर्शन में भजन संध्या का आयोजन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त दोपहर में मात्र 10 रुपये में लोगों को पौष्टिक गांधी थाली भी उपलब्ध करवाई जा रही है।

रेवती ने किया गांधी का स्मरण

फिल्म अभिनेत्री और निर्देशक रेवती ने 21 फरवरी को गांधी स्मृति का दौरा किया। उन्होंने संग्रहालय का अवलोकन किया और गांधीजी से जुड़ी महत्वपूर्ण वस्तुओं में रुचि दिखाई। गांधी स्मृति पहुँचने पर समिति के प्रशासनिक अधिकारी संजीत कुमार ने गांधी चरखा और अंतिम जन पत्रिका भेंट कर उनका अभिनंदन किया।

81वां कस्तूरबा निर्वाण दिवस आयोजित

81वें कस्तूरबा निर्वाण दिवस के अवसर पर गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति द्वारा गांधी दर्शन, राजघाट में 22 फरवरी को 'विकसित भारत में युवा महिलाओं की भूमिका' विषय पर सम्मेलन आयोजित किया गया। इस आयोजन में दिल्ली और एनसीआर के विभिन्न कॉलेजों और स्कूलों से 25 से अधिक संस्थानों के 650 से अधिक प्रतिभागियों, सहित नेहरू युवा केंद्र संगठन ने भाग लिया। कार्यक्रम में दिल्ली विश्वविद्यालय की प्रो. मनीषा पांडे, मुख्य अतिथि रहीं। विशिष्ट अतिथि एशियन लॉ कॉलेज, नोएडा की डॉ. प्रीति शर्मा थी।

इस अवसर पर गांधी दर्शन, राजघाट में कस्तूरबा गांधी की प्रतिमा का अनावरण किया गया।

नुक्कड़ नाटक व ओडिशा और छत्तीसगढ़ के जनजातीय नृत्य की सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ लोगों के आकर्षण का केंद्र रहीं।

इस आयोजन ने महिला सशक्तिकरण, युवा सहभागिता और राष्ट्र निर्माण के महत्व को रेखांकित किया।

गांधी को व्यवहार में समझना

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति ने 'डिजिटल युग में गांधीवादी मूल्यों को बढ़ावा देना' विषय पर संवाद आयोजित किया। यह कार्यक्रम 25 फरवरी 2024 को गांधी दर्शन, राजघाट में हुआ, जिसमें दिल्ली विश्वविद्यालय के विभिन्न कॉलेजों के लगभग 60 युवा छात्रों ने भाग लिया। कार्यशाला का संचालन समिति के कार्यक्रम अधिकारी डॉ. वेदाभ्यास कुंडू और शोध अधिकारी डॉ. सौरव कुमार राय ने किया। छात्रों ने गांधी क्विज में भाग लिया और गांधी दर्शन संग्रहालयों का अवलोकन किया।

'शिवोऽहम् - जागृति काल'

शिवरात्रि के पावन अवसर पर गांधी स्मृति एवम् दर्शन समिति एवं प्रज्ञा प्रवाह, दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में एक विशेष 24 घंटे के अनुष्ठान एवं सांस्कृतिक आयोजन 'शिवोऽहम् - जागृति काल' का शुभारंभ 26 फरवरी 2024 को गांधी दर्शन राजघाट में किया गया।

इस अद्वितीय आयोजन में प्रतिष्ठित विद्वानों, शिक्षाविदों, कलाकारों और आध्यात्मिक चिंतकों की सहभागिता रही। इस आयोजन की गरिमा को अनेक विशिष्ट व्यक्तित्वों की उपस्थिति ने बढ़ाया, जिनमें शामिल थे–श्री जे. नंदकुमार (अखिल भारतीय संयोजक, प्रज्ञा प्रवाह), प्रो. जगबीर सिंह (कुलपति, पंजाब विश्वविद्यालय, बठिंडा), डॉ. ज्वाला प्रसाद (निदेशक, गांधी स्मृति एवम् दर्शन समिति), प्रो. श्री प्रकाश सिंह (निदेशक, साउथ कैंपस, दिल्ली विश्वविद्यालय), पद्मश्री बतूल बेगम (प्रसिद्ध गायिका), प्रो. राणा पी. बी. सिंह (बनारस हिंदू विश्वविद्यालय), प्रो. कुमुद शर्मा (उपाध्यक्ष, साहित्य अकादमी), श्रीमती मोनिका अरोड़ा (प्रख्यात विचारक) और डॉ. मृत्युन्जय गुहा मजूमदार (लेखक)। आध्यात्मिकता की गहराई को दर्शाने वाली सांस्कृतिक प्रस्तुतियों ने उपस्थित दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया।

टेकिंग गांधी टू स्कूल

'टेकिंग गांधी टू स्कूल' कार्यक्रम के तहत ओमांश चिल्ड्रन वैली पब्लिक स्कूल, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश के 74 छात्रों एवं शिक्षकों ने गांधी दर्शन संग्रहालय का अवलोकन किया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य महात्मा गांधी के विचारों और आदर्शों को नई पीढ़ी तक पहुँचाना है।

फोटो - रोकेश शर्मा व गणेश कुमार

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली

'अंतिम जन' मासिक पत्रिका

(सदस्यता प्रपत्र)

मैं गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति द्वारा प्रकाशित अंतिम जन मासिक पत्रिका, (हिन्दी) का/की ग्राहक ....वर्ष/वर्षों के लिये बनना चाहता/चाहती हूँ।

	वर्ष	रुपये		वर्ष	रुपये
[ ]	एक प्रति शुल्क	20/-	[ ]	दो वर्ष का शुल्क	400/-
[ ]	वार्षिक शुल्क	200/-	[ ]	तीन वर्ष का शुल्क	500/-

.... बैंक चेक संख्या/डिमान्ड ड्राफ्ट संख्या ....

दिनांक .... राशि .... Director, Gandhi Smriti & Darshan Samiti, New Delhi में देय, संलग्न है।

ग्राहक का नाम (स्पष्ट अक्षरों में): ....

व्यवसाय : ....

संस्थान : ....

पता : ....

....

पिन कोड : .... राज्य : ....

दूरभाष (कार्यालय) .... निवास .... मोबाईल..............................

ई मेल : ....

हस्ताक्षर ....

कृपया इस प्रोफॉर्मा को भरकर (शुल्क) राशि (चेक/ड्राफ्ट) सहित निम्नलिखित पते पर भेजें :

प्रधान संपादक
'अंतिम जन' मासिक पत्रिका
गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली - 110002

आप हमसे संपर्क कर सकते हैं :- दूरभाष : 011-23392796

ई मेल : antimjangsds@gmail.com, 2010gsds@gmail.com

अगर आप 'अंतिम जन' पत्रिका के नियमित पाठक बनना चाहते हैं तो अकाउंट में पेमेंट कर भुगतान की प्रति या स्क्रीनशॉट और अपना पत्राचार का साफ अक्षरों में पता, पिनकोड, मोबाईल नंबर, ईमेल आईडी सहित भेजें।

Name – Gandhi Smriti & Darshan Samiti
A/c No. - 90432010114219
IFSC Code- CNRB0019043
Bank – Canara Bank
Branch – Khan Market, New Delhi-110003

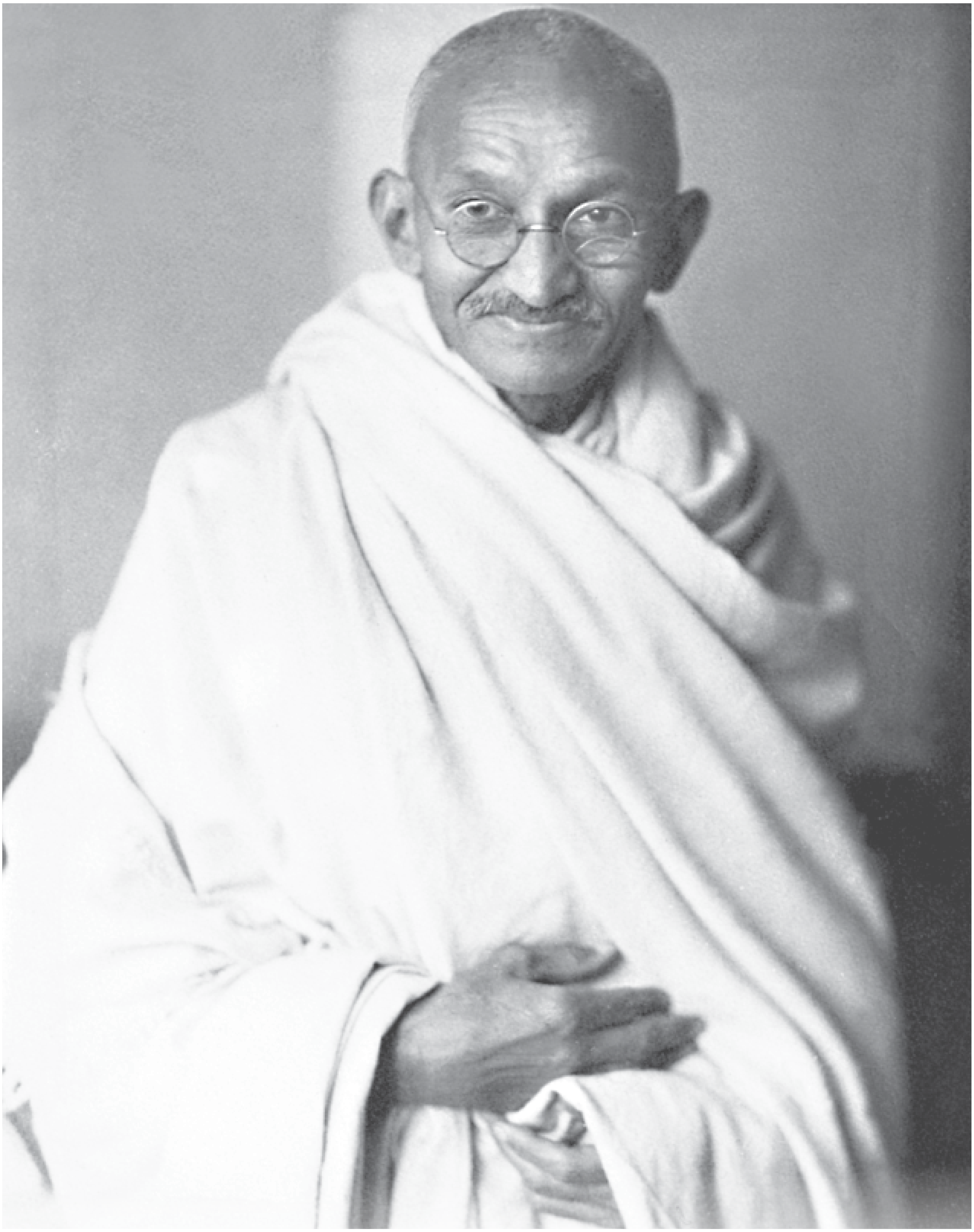

मैं उस रोशनी के लिए प्रार्थना कर रहा हूँ जो हमारे चारों ओर व्याप्त अंधकार को मिटा दे। जिन्हें अहिंसा की जीवन्तता में आस्था है वे आएं और मेरे साथ इस प्रार्थना में शामिल हो।

मो.क.गांधी

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति

हमारे आकर्षण

गांधी स्मृति म्यूजियम (तीस जनवरी मार्ग)

* गांधी स्मृति म्यूजियम
* डॉल म्यूजियम
* शहीद स्तंभ
* मल्टीमीडिया प्रदर्शनी
* महात्मा गांधी के पदचिन्ह
* महात्मा गांधी का कक्ष
* महात्मा गांधी की प्रतिमा
* वर्ल्ड पीस गोंग
* डिजिटल सिग्नेचर (रोबोटिक)

गांधी दर्शन (राजघाट)

* गांधी दर्शन म्यूजियम
* क्ले मॉडल प्रदर्शनी
* गांधीजी को समर्पित रेल कोच प्रदर्शनी
* गेस्ट हाउस और डॉरमेट्री (200 लोगों के लिये)
* सेमीनार हॉल (150 लोगों के लिये)
* कॉन्फ्रेंस हॉल (300 लोगों के लिये)
* प्रशिक्षण हॉलः (80 लोगों के लिये)
* ओपन थियेटर
* राष्ट्रीय स्वच्छता केन्द्र
* गेस्ट हाउस और डॉरमेट्री
* गांधी दर्शन आर्ट गैलरी

(डॉ. ज्वाला प्रसाद)
निदेशक

प्रवेश निःशुल्क (प्रातः 10 बजे से सायंः 6.30 बजे तक), सोमवार अवकाश

हॉल, कमरों एवं आर्ट गैलरी की बुकिंग के लिये संपर्क करें– ईमेलः 2010gsds@gmail.com, 011-23392796

gsdsnewdelhi www.gandhismriti.gov.in

RNI NO. DELHIN/2018/76242

''आप मुझे जो सजा देना चाहते हैं, उसे कम कराने की भावना से मैं यह बयान नहीं दे रहा हूँ। मुझे तो यही जता देना है कि आज्ञा का अनादर करने में मेरा उद्देश्य कानून द्वारा स्थापित सरकार का अपमान करना नहीं है, बल्कि मेरा हृदय जिस अधिक बड़े कानून से-अर्थात अन्तरात्मा की आवाज को स्वीकार करता है, उसका अनुसरण करना ही मेरा उद्देश्य है।''

मो.क.गांधी

(मोहनदास करमचंद गांधी)

गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति, नई दिल्ली
(एक स्वायत्त निकाय, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार)

प्रकाशक - मुद्रक : स्वामी गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति के लिए पोहोजा प्रिंट सोल्यूशंस प्रा. लि., दिल्ली - 110092 से मुद्रित तथा गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली-110092 से प्रकाशित।